निवेदन

पितामह भीष्म महाभारतके पात्रोंमें अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। वे आदर्श पितृभक्त, आदर्श सत्यप्रतिज्ञ, आदर्श वीर, धर्मके महान् ज्ञाता, परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले तथा महान् भगवद्भक्त थे। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उनके अगाध ज्ञानकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि 'भीष्मके इस लोकसे चले जानेपर सारे ज्ञान लुप्त हो जायँगे। संसारमें जो संदेहग्रस्त विषय हैं, उनका समाधान करनेवाला भीष्मके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।' पितामह भीष्मका चरित्र सभी दृष्टियोंसे परम पवित्र और आदर्श है। भीष्मके सदृश महापुरुष भीष्म ही हैं। भीष्मके प्रतिज्ञाबद्ध होनेके कारण उनके संतान नहीं हुई, तथापि वे समस्त जगत्के पितामह हैं। त्रैवर्णिक हिंदूमात्र आज भी पितरोंका तर्पण करते समय उन्हें श्रद्धापूर्वक जलाञ्जलि अर्पण करते हैं। ऐसे आदर्श महापुरुष भीष्मपितामहका यह संक्षिप्त चरित्र लिखकर स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजने भारतीय जनताका बड़ा उपकार किया है। यह चरित्र बहुत दिनों पहलेका लिखा रक्खा था—भगवत्कृपासे अब इसके प्रकाशनका सुअवसर प्राप्त हुआ है। यह बालक-वृद्ध, नर-नारी सभीके कामका है और सभीके जीवनको पवित्र करनेवाला है। आशा है हमारे पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

आषाढ शुक्ल १ (रथयात्रा)
सं० २०१२ वि०

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय ... पृष्ठ-संख्या

श्रीहरिः

श्रीभीष्मपितामह

वंशपरिचय और जन्म

यह सृष्टि भगवान्‌का लीला-विलास है। भगवान्‌की ही भाँति इसके विस्तार और भेद-उपभेदोंका जानना एवं वर्णन करना कठिन है। इस समय हमलोग जिस ब्रह्माण्डमें रह रहे हैं, वह अनन्त आकाशमें एक परमाणुसे अधिक सत्ता नहीं रखता। इस ब्रह्माण्डमें भी स्थूल, सूक्ष्म और कारणके भेदोंसे अनेकों लोक हैं और वे सब पारस्परिक सम्बन्धमें बँधे हुए हैं। हमलोग जिस स्थूल पृथ्वीपर रहते हैं, उसकी रक्षा-दीक्षा केवल इस पृथ्वीके लोगोंद्वारा ही नहीं होती बल्कि सूक्ष्म और कारण जगत्‌के देवता-उपदेवता एवं संत-महापुरुष इसकी रक्षा-दीक्षामें लगे रहते हैं। समय-समयपर ब्रह्मलोकसे कारक पुरुष आते हैं और वे पृथ्वीपर धर्म, ज्ञान, सुख एवं शान्तिके साम्राज्यका विस्तार करते हैं।

ऐसे कारक पुरुष ब्रह्माकी सभाके सदस्य होते हैं। जो अपनी उपासनाके बलपर ब्रह्मलोकमें गये होते हैं, वे ब्रह्माके साथ रहकर

उनके काममें हाथ बँटाते हैं और उनकी आयु पूर्ण होनेपर उनके साथ ही मुक्त हो जाते हैं। कुछ लोग वहाँसे लौट भी आते हैं तो संसारके कल्याणकारी कामोंमें ही लगते हैं और एक-न-एक दिन सम्पूर्ण वासनाओंके क्षीण होनेपर पुनः मुक्त हो जाते हैं। ब्रह्मलोकमें गये हुए पुरुषोंमें श्रीमहाभिषक्जीका नाम बहुत ही प्रसिद्ध है। ये परम पवित्र इक्ष्वाकुवंशके एक राजा थे और अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप इन्होंने इतनी उत्तम गति प्राप्त की है।

एक दिन ब्रह्माकी सभा लगी हुई थी। ऋषि-महर्षि, साधु-संत, देवता-उपदेवता एवं उसके सभी सदस्य अपने-अपने स्थानपर बैठे हुए थे। प्रश्न यह था कि जगत्में अधिकाधिक शान्ति और सुखका विस्तार किस प्रकार किया जाय? यही बात सबके मनमें आ रही थी कि यहाँसे कुछ अधिकारी पुरुष भेजे जायँ और वे पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर सबका हित करें। उसी समय गङ्गा नदीकी अधिष्ठात्री देवी श्रीगङ्गाजी वहाँ पधारीं। सबने उनका स्वागत किया। संयोगकी बात थी, हवाके एक हलके झोंकेसे उनकी साड़ीका एक पल्ला उड़ गया, तुरंत सब लोगोंकी दृष्टि नीची हो गयी। भला ब्रह्मलोकमें मर्यादाका पालन कौन नहीं करता!

विधाताका ऐसा ही विधान था, भगवान्की यही लीला थी। महात्मा महाभिषक्की आँखें नीची नहीं हुईं, वे बिना झिझक और हिचकिचाहटके गङ्गाजीकी ओर देखते रहे। भगवान् जाने उनके मनमें क्या बात थी; परंतु ऊपरसे तो ब्रह्मलोकके नियमका उल्लङ्घन हुआ ही था। इसलिये ब्रह्माने भरी सभामें महाभिषक्से कहा कि 'भाई! तुमने

यहाँके नियमका उल्लङ्घन किया है, इसलिये अब कुछ दिनोंके लिये तुम मर्त्यलोकमें जाओ। वहाँका काम तो सँभालना ही है, इस मर्यादाके उल्लङ्घनका दण्ड भी तुम्हें मिल जायगा। एक बात और है—श्रीगङ्गाजी तुम्हें सुन्दर माल्म हुई हैं, मधुर माल्म हुई हैं और आकर्षक माल्म हुई है। उनकी ओर खिंच जानेके कारण ही तुम्हारी आँखें उनकी ओर देखती रही हैं, इसलिये मर्त्यलोकमें जाकर तुम अनुभव करोगे कि जिस गङ्गाकी ओर मैं खिंच गया था, उनका हृदय कितना निष्ठुर है, तुम देखोगे कि वे तुम्हारा कितना अप्रिय करती हैं!' महाभिषक्ने ब्रह्माकी आज्ञा शिरोधार्य की।

उन दिनों पृथ्वीपर महाप्रतापी महाराजा प्रतीपका साम्राज्य था। उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या करके प्रजापालनकी क्षमता प्राप्त कर ली थी और उनसे पवित्र, प्रतिष्ठित एवं वाञ्छनीय और कोई वंश नहीं था। श्रीमहाभिषक्ने उन्हींका पुत्र होना अच्छा समझा और वे ब्रह्माकी अनुमतिसे उन्हींके यहाँ आकर पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए। धीरे-धीरे शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति वे बढ़ने लगे और उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, लोकोपकारप्रियता, अपने कर्तव्यमें तत्परता आदि देखकर महाराजा प्रतीपने उनकी शिक्षा-दीक्षाका सुन्दर प्रबन्ध कर दिया। थोड़े ही दिनोंमें वे सारी विद्याओं एवं विशेष करके धनुर्विद्यामें निपुण हो गये। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे जिस वृद्ध या रोगी पुरुषके सिरपर हाथ रख देते, वह भला चंगा, हृष्ट-पुष्ट हो जाता था। इसीसे संसारमें वे शान्तनु नामसे प्रसिद्ध हुए। प्रतीपके बुढ़ापेमें शान्तनुका जन्म हुआ था, इसलिये वे इसकी प्रतीक्षामें

थे कि कब मेरा पुत्र योग्य हो जाय और मैं उसके जिम्मे प्रजापालनका कार्य देकर जंगलमें चला जाऊँ।

एक दिन प्रतीपने शान्तनुसे कहा—'बेटा! अब तुम सब प्रकारसे योग्य हो गये हो। मैं बुड्ढा हो गया हूँ। अब मैं वानप्रस्थ-आश्रममें रहकर तपस्या करूँगा। तुम राजकाज देखो। एक बात तुम्हें मैं और बताता हूँ, एक स्वर्गीय सुन्दरी तुमसे विवाह करना चाहती है। वह कभी-न-कभी तुम्हें एकान्तमें मिलेगी। तुम उससे विवाह कर लेना और उसकी इच्छा पूर्ण करना। बेटा! तुम्हें मेरी यही अन्तिम आज्ञा है।' इतना कहकर प्रतीपने अपनी सम्पूर्ण प्रजाको एकत्र किया और सबकी सम्मति लेकर शान्तनुका राज्याभिषेक कर दिया और वे स्वयं तपस्या करनेके लिये जंगलमें चले गये।

जब श्रीगङ्गाजी ब्रह्मलोकसे लौटने लगीं, तब उन्हें बार-बार ब्रह्मलोककी घटनाएँ याद आने लगीं। एकाएक हवाके झोंकेसे वस्त्रका खिंच जाना, महाभिषक्का देखते रहना, ब्रह्माका शाप दे देना इत्यादि बातें उनके दिमागमें बार-बार चक्कर काटने लगीं। वे सोचने लगीं कि मेरे ही कारण महाभिषक्को शाप हुआ है और उन्हें ब्रह्मलोक छोड़कर मर्त्यलोकमें जाना पड़ा है। चाहे प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष, मैं इसमें कारण अवश्य हुई हूँ, तब मुझे अवश्य कुछ-न-कुछ करना चाहिये। चाहे जैसे हो, मैं महाभिषक्की सेवा अवश्य करूँगी। गङ्गाजी यह सोच ही रही थीं कि उनकी आँखें दूसरी ओर चली गयीं। उन्होंने देखा कि आठों वसु स्वर्गसे नीचे उतर रहे हैं, उनके मनमें बड़ा कुतूहल हुआ। उन्होंने वसुओंसे पूछा—'वसुओ! स्वर्गमें कुशल तो है न?

तुम सब-के-सब एक ही साथ पृथ्वीपर क्यों जा रहे हो ?' वसुओंने कहा—'माता ! हम सबोंको शाप मिला है कि हम मर्त्यलोकमें जाकर पैदा हों । हमसे अपराध तो कुछ थोड़ा-सा अवश्य हो गया था, परंतु इतना कड़ा दण्ड देनेका अपराध नहीं हुआ था । बात यह थी कि महर्षि वशिष्ठ गुप्तरूपसे संध्या-वन्दन कर रहे थे, हमलोगोंने उन्हें पहचाना नहीं, बिना प्रणाम किये ही आगे बढ़ गये । हमलोगोंने जान-बूझकर मर्यादाका उल्लङ्घन किया है, यह सोचकर उन्होंने हमें मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होनेका शाप दे दिया । वे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष हैं, उनकी वाणी कभी झूठी नहीं हो सकती; परंतु माता ! हमारी इच्छा किसी मनुष्य स्त्रीके गर्भसे पैदा होनेकी नहीं है । अब हम तुम्हारी शरणमें हैं और तुमसे यह प्रार्थना करते हैं कि तुम हमें अपने गर्भमें धारण करो । हमें साक्षात् अपना शिशु बनाओ ।'

गङ्गाके मनमें यह बात बैठ गयी । उन्होंने कहा—'अच्छा, तुमलोग यह बतलाओ कि अपना पिता किसे बनाना चाहते हो ?' वसुओंने कहा—'महाप्रतापी प्रतीपके पुत्र महाराज शान्तनुके द्वारा ही हम जन्म ग्रहण करना चाहते हैं ।' गङ्गाने कहा—'ठीक है, तुम्हारे मतसे मेरा मत मिलता है । मैं भी महाराज शान्तनुको प्रसन्न करना चाहती हूँ । इससे एक साथ ही दो काम हो जायँगे । मैं उनका प्रिय कर सकूँगी और तुम्हारी प्रार्थना पूरी हो जायगी ।' वसुओंने कहा—'माता ! एक बात और करनी पड़ेगी । हम मनुष्य-योनिमें बहुत दिनोंतक नहीं रहना चाहते, इसलिये पैदा होते ही तुम हमलोगोंको अपने जलमें डाल देना, इससे ऋषिका शाप भी पूरा

हो जायगा और शीघ्र ही हमारा उद्धार भी हो जायगा ।' गङ्गाने कहा—'तुम्हारी बात हमें स्वीकार है; परंतु एक बात तो तुमलोगोंको करनी ही पड़ेगी । महाराजा शान्तनुका मुझसे पुत्र उत्पन्न करना व्यर्थ नहीं होना चाहिये । कम-से-कम एक पुत्र तो जीवित रहना ही चाहिये ।' वसुओंने कहा—'हमलोग अपने-अपने तेजका आठवाँ अंश दे देंगे और हमारा सबसे छोटा भाई द्यु नामका वसु कुछ दिनोंतक पृथ्वीपर रह जायगा । वह बड़ा ही प्रतापी होगा; परंतु उसका वंश नहीं चलेगा ।' गङ्गाने उनकी बात स्वीकार की और वसुगण यथेष्ट स्थानको चले गये ।

महाराज शान्तनु बड़ी ही योग्यताके साथ प्रजापालनका कार्य कर रहे थे । उनके राज्यमें कोई प्रजा दुखी नहीं थी । सब दुःखोंके प्रतीकारका उपाय वे पहलेसे ही कर रखते थे । स्वयं जा-जाकर वे प्रजाके दुःख-सुखका पता लगाते थे और उनके हितकी दृष्टिसे उनका विधान करते थे । एक दिन वे घूमते-फिरते सिद्ध-चारणसेवित गङ्गाजीके तटपर पहुँच गये । उन्होंने देखा कि एक लक्ष्मीके समान कान्तिवाली सर्वाङ्ग-सुन्दरी स्त्री विचर रही है । उसके विषयमें कुछ जाननेकी उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई । उन्होंने देखा कि वह अनुरक्त दृष्टिसे मेरी ओर देख रही है और कुछ बातचीत करनेका इशारा कर रही है । उसके हृदयका भाव समझकर सम्राट् शान्तनुने उससे पूछा—'देवि ! तुम कौन हो ? तुम देवता हो या दानव, गन्धर्वकन्या हो या नागकन्या, मनुष्योंमें तो तुम्हारी-जैसी सुन्दरताका होना असम्भव ही है । [illegible]

किया था वह तुम्हीं हो। यदि ऐसी बात है तो तुम मुझे स्वीकार करके कृतार्थ करो।' मधुर और मन्द मुसकानसे राजाकी ओर देखकर वसुओंकी बात याद रखते हुए गङ्गादेवीने कहा—'राजन्! वास्तवमें मैं वही हूँ, आपकी इच्छा पूर्ण करूँगी और आपकी आज्ञाका पालन करूँगी; किंतु आपको भी एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी। मैं आपके साथ प्रिय या अप्रिय चाहे जैसा व्यवहार करूँ, आप मुझे मना नहीं कर सकेंगे और न कठोर वचन ही कह सकेंगे। आप जबतक इस प्रतिज्ञाका पालन करते रहेंगे, तभीतक मैं आपके पास रहूँगी। जिस दिन आप इसका उल्लङ्घन करेंगे, मुझे किसी कामसे रोकेंगे या निष्ठुर वाणी कहेंगे उसी समय मैं छोड़कर चली जाऊँगी।'

राजाने गङ्गाकी बात मान ली और बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें रथपर बैठाकर वे अपनी राजधानीमे ले आये। दोनों ही बड़े सुखमे रहने लगे। शान्तनुने अपनी प्रतिज्ञाके कारण उनसे उनके बारेमें कभी कुछ नहीं पूछा। पत्नीके चरित्र, आचरण, उदारता और सेवामे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और सुख-शान्तिसे अपना जीवन व्यतीत करने लगे। समय बीतते देर नहीं लगती। सुखका समय तो बहुत ही शीघ्र बीत जाता है। अनेकों वर्ष बीत गये, परंतु राजाको वे बहुत थोड़े दिनोंसे ही प्रतीत हुए। क्रमशः सात बालक हुए और गङ्गा यह कहकर कि मैं तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये ऐसा करती हूँ, उन्हें अपने जलमें फेंक देतीं। राजाको गङ्गाका यह काम बहुत ही अप्रिय मालूम होता, परंतु गङ्गाके चली जानेके भयसे वे कुछ कह नहीं सकते थे। जब आठवाँ बालक हुआ, तब भी गङ्गा हँसती हुई उसे

फेंकनेके लिये चलीं, परंतु राजा इस बार अपनेको सँभाल नहीं सके। उन्होंने उस पुत्रकी जान बचानेके लिये गङ्गासे कहा—'अरे राम, तुम कौन हो? इस प्रकार निष्ठुरताके साथ अपने ही बच्चोंकी हत्या करते समय तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता, तुम हत्याकारिणी हो, पापिनी हो। तुम्हारा नाम क्या है तनिक बतलाओ तो?' गङ्गाने कहा—'महाराज! आप इस पुत्रको रखना चाहें तो खुशीसे रक्खें, मैं अब इसे नहीं मारूँगी, इस पुत्रके कारण आप श्रेष्ठ पिता कहे जायँगे। अब मैं आपके पास नहीं रहूँगी, अब मेरे रहनेकी अवधि पूरी हो गयी। मेरे पिता राजर्षि जह्नु हैं, मेरा नाम गङ्गा है, बड़े-बड़े महर्षि मेरी सेवा करते हैं। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मैं इतने दिनोंतक आपके पास रही। ये आठों पुत्र वसु देवता हैं। वसिष्ठके शापसे इन्हें मनुष्य-योनिमें जन्म लेना पड़ा था। उनकी इच्छाके अनुसार आप इनके पिता हुए और मैं माता हुई। इनकी प्रार्थनासे ही मैंने इन्हें अपने जलमें डाल दिया है कि ये इस योनिसे शीघ्र ही मुक्त हो जायँ। वसुओंसे मैंने एक पुत्र जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा करा ली थी। अब यह पुत्र जीवित रहेगा, अब मैं चली। अभी तो मैं इसे अपने साथ लिये जा रही हूँ। वहाँ यह अध्ययन करेगा, कुछ सीखेगा और सयाना होनेपर आपके पास चला आयेगा।' इतना कहकर आठवें कुमारको लेकर गङ्गा देवी अन्तर्धान हो गयीं। वे ही द्यु नामके वसु शान्तनुके पुत्र होकर देवव्रत और आगे चलकर भीष्म नामसे प्रसिद्ध हुए।

पिताके लिये महान् त्याग

संसारका अर्थ है सरकनेवाला। अर्थात् निरन्तर परिवर्तन होना ही संसारका स्वरूप है। जो आज प्रिय है वह कल अप्रिय हो जायगा, जो आज अप्रिय है वह कल प्रिय हो जायगा। प्रतिक्षण निकटकी वस्तुएँ दूर और दूरकी वस्तुएँ निकट होती रहती हैं। इस अनादिकालसे बहती हुई धारामें न जाने कहाँ-कहाँसे आ-आकर तिनकेके समान ये सब वस्तुएँ एक साथ हो जाती हैं, क्षणभर साथ ही बहती हैं और अगले ही क्षणमें पृथक्-पृथक् हो जाती हैं। कोई प्राणी चाहे कि मैं इस संसारकी अमुक वस्तुको सर्वदा अपने साथ ही रक्खूँ या मैं उसके साथ ही रहूँ तो यह असम्भव है। कभी हो नहीं सकता।

जिस गङ्गाके लिये महाभिषक्ने ब्रह्मसभाके नियमका उल्लङ्घन करके उन्हें अपनाना चाहा था, जिनकी प्रियताके वश होकर जिन्हें रखनेके लिये उन्होंने सात पुत्रोंकी हत्या अपनी आँखोंसे देखी थी, वे गङ्गा शान्तनुको छोड़कर चली गयीं। जिस पुत्रको रखनेके लिये शान्तनुने गङ्गासे की हुई प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन किया और गङ्गासे विछोह होना भी स्वीकार किया, चाहे थोड़े दिनोंके ही लिये क्यों न हो, वह पुत्र भी गङ्गाके साथ ही चला गया। शान्तनुकी आँखें खुलीं। उनकी प्रवृत्ति और रुचि धर्मकी ओर तो पहलेसे ही थी—अब और

अधिक हो गयी। उनके राज्यमें कोई प्रजा दुखी नहीं थी। सब लोग यज्ञ, दान और तपस्यामें तत्पर हो गये। वर्णाश्रमधर्मकी व्यवस्था सुदृढ़ हो गयी। शान्तनुके हृदयमें किसीके प्रति राग-द्वेष नहीं था। उनकी धर्मज्ञता, सत्यवादिता, सरलता चारों ओर प्रसिद्ध थी। उनके पराक्रमका सब लोग सम्मान करते थे। अपार शक्ति होनेपर भी वे पृथ्वीके समान क्षमाशाली थे। कोई किसी प्राणीको दु:ख नहीं देता था, उनके राज्यमें किसी जीवकी हिंसा नहीं होती थी। वे दुखी, अनाथ, पशु-पक्षी आदिको अपना पुत्र मानते थे। उनके प्रभावसे सारी प्रजा उनके समान ही धर्मपरायण हो रही थी। और यही कारण है कि सब राजाओंने मिलकर उन्हें राजराजेश्वर सम्राट्की पदवी दी थी।

उनके मनमें एक ही चिन्ता थी। अपने पुत्र देवव्रतको देखनेके लिये वे लालायित रहते थे। वे बराबर उन्हींके बारेमें सोचा करते थे और किस प्रकार मेरा पुत्र प्राप्त होगा इसके लिये व्याकुल रहते थे। ऐसे धर्मनिष्ठ और भगवत्परायण पुरुषकी अभिलाषा पूर्ण न हो यह आश्चर्यकी बात है; परंतु उनके पुत्रके मिलनेमें जो विलम्ब हो रहा था, वह भी उनके और उनके पुत्रके हितके लिये हो रहा था; क्योंकि भगवान्का प्रत्येक विधान ही भगवान्के पूर्ण अनुग्रह एवं प्रेमसे भरा ही होता है और सारे जगत्के लिये कल्याणकारी होता है। राजर्षि शान्तनु भी भगवान्के विधानपर विश्वास करके उन्हींके अनुग्रहकी प्रतीक्षा करते रहे। एक-न-एक दिन उनकी अभिलाषा पूर्ण होगी ही।

एक दिन राजर्षि शान्तनु घूमते-फिरते गङ्गातटपर पहुँच गये। तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि गङ्गाका जल बहुत ही घट गया है। वे सोचने लगे, क्या बात है कि आज गङ्गा सूख-सी रही हैं, उनकी वह बड़ी धारा नहीं दीखती। वे गङ्गाके किनारे-किनारे जिधरसे जल आ रहा था, उधर ही बढ़ने लगे। कुछ दूर जानेपर उन्होंने देखा कि एक लम्बा-चौड़ा बड़े सुन्दर डील-डौलका सुगठित और सुन्दर शरीरवाला इन्द्रके समान तेजस्वी बालक अपने बाणोंसे गङ्गाकी धारा रोककर दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग कर रहा है। बालकके इस अमानुषिक और अद्भुत कार्यको देखकर वे बहुत चकराये। उन्होंने जन्मके समय ही केवल एक बार अपने पुत्रको देखा था, इसलिये वे अपने इस तेजस्वी कुमारको नहीं पहचान सके; परंतु वह बालक अपने पिताको पहचानता था। उसने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया और अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये वह वहीं अन्तर्धान हो गया। महाराज शान्तनुने आश्चर्यचकित होकर उसे इधर-उधर ढूँढ़ा; परंतु वे उसे नहीं प्राप्त कर सके।

उन्होंने गङ्गाजीको सम्बोधन करके कहा—'देवि! अभी जो यह बालक अन्तर्धान हो गया है, यह कौन है, किसका है? मैं फिर उसे देखना चाहता हूँ।' राजाकी प्रार्थना सुनकर गङ्गानदीकी अधिष्ठात्री देवी वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर बालक देवव्रतका दाहिना हाथ पकड़कर स्त्री-वेशमें राजाके सामने आयीं। गङ्गाने उन्हें बतलाया कि 'मेरे आठवें गर्भसे उत्पन्न होनेवाला बालक यही है, इसने सम्पूर्ण विद्याओंका अध्ययन कर लिया है। युद्धमें कोई भी

वीर इसका सामना नहीं कर सकता, इसका वीर्य और विक्रम अपार है। आपके इस बालकने महर्षि वसिष्ठसे सम्पूर्ण वेदों और वेदाङ्गोंका अध्ययन किया है। असुरोंके गुरु शुक्राचार्य जिन विद्याओं-को जानते हैं, देवताओंके गुरु बृहस्पति जो कुछ जानते हैं, इस बालकने वह सब कुछ सीख लिया है। देवता और दैत्य दोनों ही इससे प्रेम करते हैं, और तो क्या भगवान्के अवतार स्वयं महर्षि परशुरामने अपने सब दिव्य एवं अमोघ अस्त्र-शस्त्र इसे दे दिये हैं। यह बड़ा संयमी, सदाचारी, भगवद्भक्ति-निष्ठ और तत्त्वज्ञानी है। अब मैं इसे आपको सौंपती हूँ, आप ले जाइये।' पुत्रके मिलनेसे शान्तनु-को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे देवव्रतको अपने साथ लेकर अपनी राजधानीमें लौट आये। अब उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। देवव्रतको उन्होंने युवराज बना दिया। सारी प्रजा देवव्रतकी सच्चरित्रता और साधुतासे प्रसन्न हो गयी। राजा शान्तनु अपने राज्यका सारा भार देवव्रतको सौंपकर स्वच्छन्द विचरने लगे। इस प्रकार चार वर्ष बीत गये।

भगवान्की लीला जानी नहीं जाती। कब किसके मनमें कौन-सी प्रेरणा कर देंगे? कब किसके शरीरद्वारा कौन-सा काम कर लेंगे! यह बात केवल वही जानते हैं। देवव्रतको युवराज बनाकर शान्तनु निश्चिन्त हो गये थे। उनके मनमें फिर विषय-वासना उठेगी और वे पुनः संसारके चक्करमें पड़ जायँगे—यह आशा किसीको भी नहीं थी। अब यही समझा जा रहा था कि इनके पास इतना बड़ा साम्राज्य है, देवव्रत—जैसा पुत्र है, अब तो ये केवल भगवान्के भजन-

में ही अपना समय बितावेंगे; परंतु भगवान्‌की दूसरी ही इच्छा थी। भगवान्‌को तो अभी इनका विवाह करवाकर एक महान् वंशकी सृष्टि करनी थी और हुआ भी ऐसा ही।

एक दिन महाराज शान्तनु घूमते-फिरते यमुना-किनारे पहुँच गये। वहाँपर एक तरहकी दिव्य अपूर्व सुगन्ध फैल रही थी। शान्तनु बहुत प्रसन्न हुए और वह सुगन्ध कहाँसे आ रही है इसका पता लगाने लगे। आगे बढ़नेपर जलके किनारे एक परम सुन्दरी कन्याको देखकर सम्राट्‌ने पूछा—'तुम कौन हो और यहाँ किसलिये आयी हो ?' कन्याने उत्तर दिया कि 'मैं दाशराजकी पुत्री हूँ तथा यहाँसे नावद्वारा आगन्तुकोंको उस पार पहुँचाती हूँ।' महाराज शान्तनु उसकी सुन्दरताको देखकर उसपर मोहित हो गये और उन्होंने उस कन्याके धर्मपिता निषादराजके पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। दाशराजने कहा—'महाराज! यह तो सभी जानते हैं कि लड़की अपने घर नहीं रखी जा सकती। उसे किसी-न-किसी-को देना ही पड़ेगा। देनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है, आप देशके स्वामी हैं। यदि यह लड़की आपकी हो सके तो इससे बढ़कर मेरे लिये सौभाग्यकी बात और क्या होगी। आप सत्यवादी हैं। मैं आपके वचनोंपर विश्वास करता हूँ। आप-जैसे सत्पात्रको कन्या देनेकी मेरी हार्दिक इच्छा भी है तथापि मैंने पहले ही एक प्रण कर लिया है। यदि आप उसको पूरा कर सकें तो फिर कन्यादान करनेमें कोई अड़चन नहीं रह जायगी।' शान्तनुने पूछा—'भाई! तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?' साफ-साफ कहो। तुम्हारी बात सुनकर यदि

वह मुझे कर्तव्य जान पड़ेगा और मेरी शक्तिके अंदरका काम होगा तो मैं उसे अवश्य करूँगा। सामर्थ्य न होनेपर लाचारी है।' दाशराजने कहा—'प्रभो! मेरा यह निश्चय है कि इसके गर्भसे जो पुत्र होगा वही राज्यका उत्तराधिकारी होगा। दूसरी किसी रानीके पुत्रको आप राजा नहीं बना सकेंगे।' राजर्षि शान्तनु दाशराजकी प्रार्थना नहीं पूरी कर सके, यद्यपि उनका चित्त उस कन्याकी ओर आकर्षित हो चुका था। उनके प्राण उसकी ओर बरबस खिंच रहे थे तथापि देवव्रतके प्रेम और कर्तव्यके वश होकर उन्होंने यह बात स्वीकार नहीं की, वे अपनी राजधानीको लौट गये।

राजधानीमें जानेपर भी राजर्षि शान्तनु उस सुन्दरी कन्याको भूल नहीं सके। रह-रहकर उन्हें उसकी याद आया करती थी। शोकके कारण उनकी दशा शोचनीय हो चली। देवव्रतसे उनका शोक छिपा न रहा। उन्होंने एकान्तमें जाकर पिताके चरणोंकी वन्दना की और उनसे पूछा—'पिताजी! सांसारिक दृष्टिसे आपकी कहीं कुछ हानि नहीं हुई है। सब राजा आपकी आज्ञा मानते हैं, सभी प्रजा सुखी है। आपके शरीरमें कोई बीमारी भी नहीं देख पड़ती, मैं हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न हूँ फिर आपकी चिन्ताका क्या कारण है? क्या आप मेरे ही बारेमें कुछ सोचा करते हैं? यदि यह बात है तो आप मुझसे वह बात कहिये। मैंने कई दिनोंसे ध्यान देकर देखा है कि अब आप घोड़ेपर चढ़कर बाहर नहीं निकलते. आपकी कान्ति मलिन होती जा रही है। बदन पीला पड़ रहा है और शरीर शिथिल होता जा रहा है। आपके मनमें ऐसी कौन-सी पीड़ा है? आप कृपा करके मुझे बतलाइये. मैं उसे दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।'

शान्तनुने उन्हें कुछ स्पष्ट उत्तर नहीं दिया, केवल इतना ही कहा कि 'बेटा! मेरे केवल तुम्हीं एक पुत्र हो। अस्त्र-शस्त्रोंसे तुम्हारा बड़ा प्रेम है और युद्धका व्यसन है। भगवान् न करे तुमपर कोई विपत्ति आवे; परंतु मनुष्य-जीवनका कुछ ठिकाना न देखकर मैं बड़े सोचमें रहता हूँ। तुम अकेले ही सौ पुत्रोंसे भी श्रेष्ठ हो यह समझकर मैं और विवाह नहीं करता और पुत्र भी पैदा नहीं करता।' यद्यपि शान्तनुने अपने हृदयकी बात स्पष्ट नहीं कही तथापि देवव्रतको समझते देर नहीं लगी, वे असाधारण बुद्धिमान् थे। उन्होंने अपने पिताके हितैषी बूढ़े मन्त्रीके पास जाकर पिताकी चिन्ताका कारण पूछा। वहाँ उन्हें सब बातें स्पष्ट माळूम हो गयीं। देवव्रतने अपने परिवारके बूढ़े क्षत्रियों और मन्त्रियोंको लेकर दाशराजके घरकी यात्रा की। दाशराजने विधिपूर्वक पूजा करके देवव्रतकी अभ्यर्थना की और सबका यथोचित सम्मान करके उनसे अपने योग्य सेवा बतानेकी प्रार्थना की। देवव्रतने अपने पिताके लिये उसकी कन्या सत्यवतीकी याचना की। दाशराजने कहा—'युवराज! आप भरतवंशियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। जब आप स्वयं अपने मुँहसे इस सम्बन्धका प्रस्ताव कर रहे हैं, तब मैं भला कब अस्वीकार कर सकता हूँ। ऐसे प्रशंसनीय और प्रार्थनीय सम्बन्धको न स्वीकार करनेपर इन्द्रको भी पछताना पड़ेगा। आप जानते ही हैं और न जानते हों तो जान लें कि यह मेरी औरस कन्या नहीं है। आपलोग जैसे धर्मात्मा पुरुष राजा उपरिचरकी यह अयोनिजा कन्या है और महर्षि पराशरने कृपा करके इसे सुगन्ध-मय कर दिया है एवं इसके सारे दोष निकाल दिये हैं। इसके

पिताने भी मुझसे बार-बार कहा था कि इसका विवाह राजर्षि शान्तनुसे ही करना । राजर्षि असितने यह कन्या माँगी थी, पर मैंने उन्हें देना स्वीकार नहीं किया । मैं कन्याका पिता हूँ, अतः कन्याके हितके लिये मेरा कुछ कहना अनुचित नहीं है, आप मेरी धृष्टता क्षमा करें । आपके पिताको यह कन्या देनेमें मुझे एक दोष जान पड़ता है, वह है बलवान्से शत्रुता; क्योंकि इस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह राज्यके लिये आपसे झगड़ा कर सकता है और यह निश्चय है कि जो आपसे शत्रुता करेगा उसका नाश हो जायगा । देवता, दैत्य, गन्धर्व चाहे जो हो आपके विपक्षमें रहकर जीवित नहीं रह सकता । बस, इसी भयसे मैं आपके पिताके साथ इस कन्याका विवाह करनेमें आनाकानी करता हूँ ।'

युवराज देवव्रतने सबके सामने प्रतिज्ञापूर्वक कहा—'दाशराज! मैं अपने पिताकी प्रसन्नताके लिये तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा । मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि तुम्हारी कन्यासे जो पुत्र पैदा होगा वही राज्यका अधिकारी होगा । मैं सत्य कहता हूँ, शपथपूर्वक कहता हूँ । मेरे वचन मिथ्या हो नहीं सकते । ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाला पुरुष पृथ्वीपर न हुआ है न होगा ।' *

देवव्रतकी प्रतिज्ञा सुनकर सब क्षत्रियोंके मुखसे साधु-साधुकी

---

* इदं मे व्रतमादत्स्व सत्यं सत्यवतां वर ।
न वै जातो न वाजात ईदृशं वक्तुमुत्सहेत् ॥
एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे ।
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति ॥

आवाज निकल पड़ी । सब एक स्वरसे उनकी प्रशंसा करने लगे । परंतु दाशराजको अभी संतोष नहीं हुआ था, वे इससे भी कड़ी प्रतिज्ञा कराना चाहते थे । यदि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा न करायी होती तो आज संसारमें भीष्मकी इतनी महिमा नहीं होती । वास्तवमें तो उनकी प्रतिज्ञा करानेके कारण ही भीष्मका भीष्म नाम पड़ा । कभी-कभी बाहरसे निष्ठुरतापूर्ण क्रिया दीखनेपर भी उसके भीतर बड़े महत्त्वकी बात रहती है ।

हाँ, तो दाशराजने और कठिन प्रतिज्ञा करानेके लिये भीष्मसे कहा—'आप धर्मात्मा और योग्य हैं, आप सम्राट् शान्तनुके पुत्र और प्रतिनिधि हैं । आप जो कुछ कहते हैं उसपर मेरा पूरा विश्वास है। आप अपनी बातसे कभी नहीं टलेंगे, परंतु इस विषयमें मुझे कुछ और कहना है । कन्यापर अधिक स्नेह होनेके कारण उसकी भलाई-के लिये मैं जो कुछ कर सकता हूँ, वह किये बिना मुझे संतोष नहीं हो सकता । बात यह कहनी है कि आपने तो प्रतिज्ञा कर ली है; परंतु सम्भव है आपका पुत्र सत्यवतीकी संतानको राजा होनेसे वञ्चित कर दे । वह आपकी प्रतिज्ञाका पालन न करे । इस संदेहको मिटानेके लिये आप क्या कर सकते हैं ? मैं यह जानना चाहता हूँ ।'

दाशराजकी बात सुनकर युवराज देवव्रतने सत्यधर्ममें स्थित होकर पिताकी प्रसन्नताके लिये यह प्रतिज्ञा की । उन्होंने कहा—'दाशराज ! मैं इन उपस्थित राजाओं, मन्त्रियों और वृद्ध पुरुषोंके सामने [illegible] प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरा यह निश्चय कभी टूट [illegible] राज्य तो पहले ही छोड़ दिया है । अब पुत्रके

सम्बन्धमें मेरा यह निश्चय है कि मैं आजसे ब्रह्मचारी ही रहूँगा। पुत्र न होनेके कारण मेरी सद्गतिमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ेगी, भगवान् मुझपर प्रसन्न होंगे। दाशराजसे मैं बहुत-बहुत प्रसन्न हूँ; क्योंकि इन्हींकी कृपासे मुझे ऐसी प्रतिज्ञा करनेका अवसर मिला और मैं अब ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर निश्चिन्त भावसे भगवान्का भजन कर सकूँगा।'

भीष्मकी यह अलौकिक वाणी सुनकर धर्मात्मा दाशराजके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया और उन्होंने अत्यन्त आनन्दित होकर अपनी कन्या देनेका वचन दिया। उस समय अन्तरिक्षमें स्थित ऋषियों और देवताओंने भीष्मपर पुष्पोंकी वर्षा की और 'यह भीष्म है, यह भीष्म है' इस प्रकार भीष्मकी प्रशंसा की। इस भीषण प्रतिज्ञाके कारण ही देवव्रतका नाम भीष्म हुआ। वे सत्यवतीको रथपर बैठाकर सबके साथ हस्तिनापुर लौट आये और अपने पिताके चरणोंमें निवेदन किया। सभी लोग भीष्मकी प्रशंसा करने लगे। भीष्मके इस दुष्कर कर्मको देख-सुनकर शान्तनु बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने भीष्मको इच्छामृत्युका वरदान दिया। उन्होंने कहा—'भीष्म! जबतक तुम्हारे मनमें जीनेकी इच्छा रहेगी, तबतक मृत्यु तुम्हारे शरीरका स्पर्श नहीं कर सकेगी। जब तुम उसे आज्ञा दोगे, जब वह तुम्हारी अनुमति प्राप्त कर लेगी, तभी तुम्हारे शरीरपर वह अपना प्रभाव डाल सकेगी। भीष्म! वास्तवमें तुम निष्पाप हो। मैं तुम्हें यह वर नहीं दे रहा हूँ। यह तो तुम्हारी शुद्धहृदयताका छोटा-सा फल है।' *

---

* न ते मृत्युः प्रभविता यावज्जीवितुमिच्छसि।
त्वत्तो ह्यनुज्ञां सम्प्राप्य मृत्युः प्रभवितानघ॥

शान्तनुने रूप-यौवनसे सम्पन्न उस सुन्दरी सत्यवतीको अपने रनिवासमें रख लिया। ज्योतिषियोंसे पूछकर शुभ मुहूर्तमें विवाह किया और दोनों ही सुखपूर्वक रहने लगे।

भीष्म सब शास्त्रोंके गम्भीर विद्वान् थे। उन्होंने उनका अध्ययन-आलोडन करके यह निश्चय कर लिया था कि जगत्में कुछ सार नहीं है। यदि इस जीवनका कुछ फल है तो वह है भगवान्का भजन। वे शान्तनुके विवाहके पहले भी भगवान्की आज्ञा और अपना कर्तव्य समझकर ही राज-काजमें भाग लेते थे, अब तो और भी अच्छा संयोग बन गया। उनके मनमें यदि पहले तनिक भी अपनेपनका संस्कार रहा होगा तो वह सर्वथा नष्ट हो गया। उनके मनमें कम-से-कम कामिनी और कञ्चनके संस्कार तो नहीं रहे। वे अब भी पूर्ववत् प्रजापालनका काम बड़े मनोयोगसे करते, हर तरहसे पिता-को प्रसन्न करनेकी चेष्टा करते और निरन्तर भगवान्का स्मरण रखते। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये।

चित्राङ्गद और विचित्रवीर्यका जन्म, राज्यभोग, मृत्यु और सत्यवतीका शोक

जीवके संकल्पोंका अन्त नहीं है। वह क्षण-क्षण संकल्प करता रहता है। यदि सच कहें तो क्षणोंका संकल्प भी वही करता है। वह संकल्प क्यों करता है? इसलिये कि उसे ऐसा मालूम पड़ता है कि मुझे कोई स्थिति प्राप्त नहीं है, मुझे कोई वस्तु प्राप्त नहीं है। वह स्थिति मुझे प्राप्त हो जाय, वह वस्तु मुझे प्राप्त हो जाय, उसे मैं अपने बलसे, पौरुषसे, इस युक्तिसे, इस उपायसे यों प्राप्त कर लूँगा। यह सुख प्राप्त करूँगा, यह उत्तम भोग प्राप्त करूँगा—इत्यादि अनेकों प्रकारकी कल्पनाएँ होती रहती हैं। बस, इन्हीं कल्पनाओंमें अथवा इन कल्पनाओंकी पूर्तिमें जीवका जाग्रत्-कालीन और स्वप्न-कालीन जीवन व्यतीत होता है। यदि अपनी कल्पनाओंके अनुरूप स्थिति या वस्तु प्राप्त हो गयी, तब तो वह सफलताकी प्रसन्नतासे फूल उठता है और यदि मनोवाञ्छित वस्तु न मिली, अपनी कल्पनाके अनुरूप स्थिति प्राप्त न हुई तो सिर पीट-पीटकर रोने लगता है। यही सारे जगत्की दशा है, अपने स्वरूपको—भगवान्को भूल-कर अपने अहंकारके कारण यह स्थिति स्वयं अपने आप ही पैदा की गयी है।

भोले जीवो! क्या तुम अपनी कल्पनाके अनुसार सृष्टिको बनाना-बिगाड़ना चाहते हो? क्या तुम्हारी ऐसी धारणा है कि हम सब अलग-अलग अपनी धारणाके अनुरूप सृष्टिका निर्माण कर

लेंगे ! क्या तुम्हें विश्वास है कि इस प्रकार संसारका संचालन सुव्यवस्थितरूपसे हो सकेगा ! इस सारी सृष्टिका व्यवस्थापक एक है, सारे जगत्के अणु-अणु और परमाणु-परमाणुकी गति-विधिका निरीक्षण हो रहा है। कौन-सा कण कब किस प्रकार दूसरे कणसे मिले—इसका नियम है । कौन-सा व्यक्ति किस स्थानपर बैठकर, किस पात्रमें अन्नके कौन-से दाने किस समय खायगा, यह समय, स्थान, अन्न, व्यक्ति और पात्रके भाग्यसूत्र जोड़कर निश्चित किया जा चुका है । एक-एक अणु जीव हैं, उनका प्रारब्ध है, वे भी किसीकी इच्छासे उनका भोग कर रहे हैं । कोई भी उन्हें अन्यथा कर नहीं सकता । फिर निश्चित बातोंमें उलझनकी कल्पना करके उन्हें सुलझानेके लिये क्यों अपने जीवनका अमूल्य समय नष्ट करते हो ! क्यों नहीं भगवान्के भजनमें, स्वरूपाकारवृत्तिमें स्थित रहते ? यह परिवर्तन तो होनेवाला ही है, अज्ञानी इसमें दुखी होंगे, सुखी होंगे, रोयेंगे-हँसेंगे और जो इस तत्त्वको जानते हैं, वे हँसने-रोनेके निमित्त सामने आनेपर न हँसते हैं, न रोते हैं, समभावसे स्थिर रहते हैं ।

शान्तनुके मनमें था कि अबतक मेरे एक ही पुत्र है, मैं और विवाह करूँ, बहुत-से पुत्र उत्पन्न करूँ । सब भीष्मके समान बलिष्ठ होंगे, सब दीर्घजीवी होंगे, उन्हें युवावस्थामें आनन्द उपभोग करते एवं अपनी सेवा करते देख-देखकर मैं प्रसन्न होऊँगा; परंतु उनकी यह कल्पना झूठी थी । उन्होंने अपनी ओरसे संकल्प किया, चेष्टा की, विवाह होनेवाला था, बच्चे होनेवाले थे । विवाह हो गया, बच्चे भी हो गये । यह सब तो हुआ, परंतु समय वह आ गया, जिसका नाम

सुनकर जिसकी कल्पना करके अज्ञानी प्राणी घबरा उठते हैं। महाराज शान्तनुके मृत्युका समय आ गया और वे इतना बड़ा साम्राज्य, इतने सुन्दर-सुन्दर और बलिष्ठ पुत्र छोड़कर चल बसे। इनकी तो बात ही क्या—वे उस स्त्रीको छोड़कर सर्वदाके लिये सो गये, जिसकी रूपमाधुरीपर मोहित होकर उन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय और ज्येष्ठ पुत्रको विशाल साम्राज्यसे एवं संसारके उसी सुखसे, जिसके लिये वे स्वयं लालायित थे, वञ्चित किया था।

उनके दो पुत्र और थे—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। शान्तनुकी मृत्यु हो जानेके पश्चात् सत्यवतीकी आज्ञासे भीष्मने चित्राङ्गदको राजसिंहासनपर बैठाया। चित्राङ्गद सम्राट्के पुत्र थे, वीर थे, युवक थे और थे उत्साही। उन्हें अपनी भुजाओंपर बड़ा अभिमान था। उन्होंने पृथिवीके सब राजाओंको हरा दिया। उनकी आँखोंके सामने अपने समान कोई दीखता ही नहीं था। वे सबको तुच्छ समझते थे। भला, यह भी कोई बात है, सब-के-सब परमात्माकी संतान हैं, परमात्माकी शक्तिसे जीवित हैं। सबमें परमात्मा है और सब रूपोंके रूपमें परमात्मा ही प्रकट हो रहे हैं। वास्तवमें सब कुछ परमात्मा ही है। परमात्माके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तब कौन किसको क्यों तुच्छ समझे? यह घोर अहंकार है, महान् अज्ञान है और दूसरोंका ऐसा अपमान करके और इस [illegible] ही तिरस्कार है। परन्तु विजयोन्मत्त चित्राङ्गदको यह कौन सुझाने आता! वह ऐंठकर चलते, इतराकर बात करते [illegible]। देवता, दैत्य, मनुष्य—सब उनसे डर गये!

सृष्टि बहुत विशाल है, इसमें एक-से-एक बढ़कर हैं। कोई बहुत बड़ा वीर हो जाय, फिर भी नहीं कहा जा सकता कि इससे बड़ा और कोई नहीं है। अरे, वह तो इस सृष्टिमें एक कीड़े-मकोड़ेके बराबर है। एक ब्रह्माण्डमें एक सूर्य एक कणके समान है। एक सूर्यमें एक पृथ्वी कणके समान है और एक पृथ्वीमें एक मनुष्य, वह चाहे जितना बड़ा वीर क्यों न हो, एक कणसे अधिक महत्ता नहीं रखता। परंतु वह अपने स्वरूपपर, अपनी सत्तापर और अपने क्षणभंगुर जीवनपर विचार नहीं करता, इसीसे फूला-फूला फिरता है। आखिर एक दिन चित्राङ्गदके जोड़का वीर मिल गया। उसका नाम भी चित्राङ्गद ही था। वह गन्धर्व था। मनुष्य चित्राङ्गद बली था तो गन्धर्व चित्राङ्गद महाबली था। उससे युद्धका कोई निमित्त भी नहीं था, केवल इतना ही बहाना था कि तुमने मेरा नाम क्यों रक्खा ? बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर दोनों ही वीर तीन वर्षतक लगातार लड़ते रहे। अन्ततः मनुष्य चित्राङ्गद हार गये, गन्धर्व चित्राङ्गदकी जीत हुई। जो अपने सामने किसीको कुछ समझते ही नहीं थे, उन्हींका शरीर आज खूनसे सराबोर होकर जमीनमें गिर पड़ा और गीध-कौओंने उससे अपनी भूख मिटायी। चाहे जितना बड़ा सम्राट् हो—जितना बड़ा वीर हो, अन्तमें उसकी यही गति है!

चित्राङ्गदकी मृत्युके पश्चात् सत्यवतीकी आज्ञासे विचित्रवीर्य राजसिंहासनपर बैठाये गये। अभी उनकी उमर कच्ची थी, वे बच्चे

तो वीर एवं सत्पात्र ही होते हैं। इसलिये कन्याओंको मैंने अपने रथपर बैठा लिया है, जिसे अपनी वीरताका अभिमान हो, जो वास्तवमें इन कन्याओंको चाहता हो वह सामने आकर दो-दो हाथ देख ले। चाहे जय हो या पराजय, अपनी शक्तिकी परीक्षा तो कर ले, आगे देखा जायगा।'

बहुत-से लोग अपने ओठ दाँतों तले दबाकर ताल ठोंकते हुए युद्धके लिये तैयार हो गये, बहुतोंके शस्त्रास्त्र शीघ्रताके मारे गिर पड़े और उनकी झनझनाहटसे दिशाएँ भर गयीं। घोड़े, हाथी एवं रथोंपर सवार होकर लोग भीष्मको घेरनेके लिये दौड़े। उस समय भीष्मसे अपमानित होनेके कारण सबकी भौंहें टेढ़ी हो गयी थीं, सबकी आँखें लाल हो गयी थीं। ऐसा मालूम होता था कि ये सब-के-सब भीष्मको पीनेके लिये ही दौड़े जा रहे हैं। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, परंतु भीष्मके सामने कोई ठहर न सका। सब-के-सब हार गये। सबके पीछे ललकारता हुआ शाल्व आया, परंतु अन्तमें वह भी भीष्मसे हार गया। भीष्मने पकड़ लेनेपर भी शाल्वका वध नहीं किया, दया करके उसे छोड़ दिया। शाल्व अपने नगरको चला गया और वहाँ धर्मपूर्वक राज्य करने लगा। सभी राजा अपनी-अपनी राजधानीको लौट गये, भीष्म अपने रथपर तीनों कन्याओंको लेकर वन, नदी और पहाड़, वृक्षोंसे पूर्ण बीहड़ मैदानोंको लाँघते हुए हस्तिनापुरको लौटे। रास्तेमें उन तीनों कन्याओंके प्रति उनके मनमें यही भाव था कि ये तीनों मेरी छोटी बहिनके समान हैं, पुत्रीके समान हैं और पुत्रवधूके समान हैं। उन्होंने हस्तिनापुरमें आकर वे

कन्याएँ विचित्रवीर्यको सौंप दीं और माता सत्यवतीसे सलाह लेकर उनके विवाहका उद्योग करने लगे।

तीन लड़कियोंमेंसे काशिराजकी सबसे बड़ी लड़की थी अम्बा, छोटी दो लड़कियोंका नाम था अम्बिका और अम्बालिका। अम्बाने भीष्मसे कहा—'महात्मन्! आप बड़े धर्मज्ञ हैं, इसलिये आपसे अपने हृदयकी बात कहनेमें मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है। जब स्वयंवरमें देश-देशके नरपति एकत्र हुए थे, तब मैंने वहाँ मन-ही-मन सौभपति महाराज शाल्वको अपना पति मान लिया था, अतः धर्मतः वही मेरे स्वामी हैं। मेरे पिताका भी यही विचार था, इसलिये अब आप ऐसी व्यवस्था कीजिये कि मेरे धर्मकी हानि न हो।' अम्बाकी बात सुनकर भीष्म सोचने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये। उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर सलाह ली और अन्तमें यही निश्चय किया कि अम्बाकी जहाँ इच्छा हो, उसे वहीं जाना चाहिये। अम्बासे कह दिया गया कि तुम चाहो तो शाल्वके पास जा सकती हो। अम्बा शाल्वके पास चली गयी। अम्बिका और अम्बालिकासे विचित्रवीर्यका विवाह हो गया। वे दोनों रानियोंके साथ गार्हस्थ्य-सुखका उपभोग करने लगे।

भीष्मने अम्बाके साथ दासी और बहुत-से वृद्ध ब्राह्मण कर दिये, उनके साथ वह यथासमय शाल्वके पास पहुँची। उसने जाकर शाल्वसे कहा—'पुरुषश्रेष्ठ! मैंने आपको पतिरूपसे वरण किया है और आपने इस बातकी स्वीकृति भी दी है, इसलिये अब आप मुझे ग्रहण कीजिये।' शाल्वने मुसकराकर कहा—'सुन्दरी! तुम पहले दूसरेके घर रह चुकी हो, इसलिये मैं तुम्हारे साथ विवाह

नहीं कर सकता। भीष्मने हाथ पकड़कर तुम्हें रथपर बैठाया था। उन्होंने युद्धमें तुम्हें जीत लिया था। तुमने तत्काल उनका विरोध भी नहीं किया था। इसलिये मेरे-जैसा धर्मात्मा तुम्हें पत्नी नहीं बना सकता। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, भीष्मके पास या और कहीं, बड़ी प्रसन्नतासे जा सकती हो। अब जाओ, यहाँ रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं।' अम्बा रोने लगी। उसने गिड़गिड़ाकर कहा—'राजन्! आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, भीष्म मुझे बलपूर्वक ले गये थे, परंतु उनके प्रति मेरे हृदयमें कभी अनुरागका संचार नहीं हुआ और न तो उन्होंने ही कभी मुझे दूषित दृष्टिसे देखा। मैं आपसे ही प्रेम करती हूँ, निर्दोष हूँ और आपकी शरणमें आयी हूँ। भीष्मने मुझे यहाँ आनेकी आज्ञा दे दी है। उन्हें अपना विवाह करना भी नहीं है, उन्होंने मेरी बहिनोंका विवाह अपने भाईके साथ किया है। मैं शपथपूर्वक कहती हूँ कि आपको छोड़कर मैं और किसीके साथ विवाह करना नहीं चाहती। मैं आपके प्रणय और प्रसादकी इच्छुक हूँ। आप मुझे स्वीकार कीजिये।' परंतु शाल्वने उसकी एक न सुनी, उलटे शाल्वने अम्बाको ऐसी बातें समझायीं जिनसे उसके मनमें बैठ गयी कि सारा दोष भीष्मका ही है। वह बदला लेनेकी इच्छासे ऋषियोंके आश्रममें गयी और वहाँ जाकर ऋषियोंको अपना यह निश्चय कह सुनाया कि 'अब मैं किसीका आश्रय नहीं लूँगी। आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर कठिन-से-कठिन तप करूँगी। आपलोग केवल मुझे आश्रममें रहनेकी अनुमति दीजिये।' ऋषियोंने बहुत समझाया कि 'तुम अपने पिताके पास लौट जाओ।' परंतु वह लौटी नहीं, अपने हठपर अड़ी रही।

ऋषियोंने अम्बाकी यह बात हो ही रही थी कि वहाँ होत्रवाहन ऋषि आ पहुँचे। आतिथ्यसत्कारके पश्चात् जब उन्हें अम्बाका परिचय प्राप्त हुआ, तब उन्होंने उसके साथ बड़ी सहानुभूति प्रकट की। वे नातेमें अम्बाके नाना लगते थे। उन्होंने अम्बाको धीरज दिया और उसकी रक्षाकी जिम्मेवारी अपने ऊपर ली। उन्होंने अम्बाको यह सलाह दी कि 'तुम भृगुवंशी परशुरामकी शरण लो, मेरा नाम बताओ और उनसे सहायताकी प्रार्थना करो। वे अवश्य तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।' ये बातें हो ही रही थीं कि अकस्मात् परशुरामके शिष्य अकृतव्रण आ पहुँचे और पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि श्रीपरशुरामजी महाराज कल ही यहाँ पधार रहे हैं। अकृतव्रणने भी कुछ ऐसी बातें कहीं जिससे भीष्मका ही दोष सिद्ध हुआ और अम्बाके मनमें उनसे बदला लेनेकी भावना और भी दृढ़ हो गयी।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही महात्मा परशुराम वहाँ पधारे। सब ऋषियोंने उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। होत्रवाहनने अम्बाकी कथा कह सुनायी और अम्बाने बड़े करुणस्वरमें उनसे प्रार्थना की कि 'आप भीष्मको दण्ड दीजिये।' परशुरामने कहा—'मैं शस्त्र-त्याग कर चुका हूँ। भीष्म बड़े सज्जन और पूजनीय हैं, वे मेरी बात मान लेंगे। तुम घबराओ मत।' परंतु अम्बा इसी हठपर डटी रही कि 'आप भीष्मको मार डालिये।' अकृतव्रणने भी परशुरामजीसे यही आग्रह किया कि 'यदि भीष्म आपकी बात न मानें, पराजय स्वीकार न करें तो भीष्मके साथ युद्ध करना और उन्हें मार डालना आपका कर्तव्य है।' परशुरामजीको भी अपनी क्षत्रियोंका नाश

करनेवाली प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया । पुराने संस्कार जग उठे, उन्होंने ऋषियोंके सामने ही कहा—'पहले तो मैं यों ही भीष्मको मनानेकी चेष्टा करूँगा । काशिराजकी कन्याको साथ लेकर उनके पास जाऊँगा और उन्हें इसे स्वीकार करनेके लिये बाध्य करूँगा । यदि वे मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं उन्हें मारनेमें कोई कोर-कसर नहीं करूँगा ।'

परशुरामके साथ अम्बा, होत्रवाहन और बहुत-से ऋषि कुरुक्षेत्रकी पुण्यभूमिमें आये । वहाँ सब सरस्वतीके किनारे ठहर गये और भीष्मको सूचना दे दी कि हमलोग आ गये हैं । भीष्म उसी समय अपने ब्राह्मण, पुरोहित आदिको लेकर उनका स्वागत करनेके लिये उनके पास पहुँच गये । परशुरामने उनका आतिथ्य स्वीकार किया, कुशल-मङ्गल पूछा और भीष्मसे यह कहा—'भीष्म ! तुमने अम्बाको हरकर बड़ा अपराध किया है, क्योंकि यह पहलेसे ही शाल्वपर आसक्त थी । एक तो अकाम होकर भी तुमने हरण किया, दूसरे इसका त्याग कर दिया । अब इस कन्याको समाजका कोई धर्मात्मा पुरुष कैसे ग्रहण कर सकता है ? यह सब तुम्हारे ही कारण हुआ है । मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम इसे ग्रहण करो और अपने धर्मकी रक्षा करो । इसका यों अपमान नहीं करना चाहिये ।'

परशुरामकी बातोंसे कुछ ऐसी ध्वनि निकलती थी कि भीष्म अम्बाके साथ विवाह करें, परंतु भीष्मके मनमें तो ऐसी कल्पना हो ही नहीं सकती थी । उन्होंने कहा—'भगवन् ! अब इसका

विवाह मेरे भाई विचित्रवीर्यके साथ कैसे हो सकता है । इसने मुझसे पहले कहा है कि मैं शाल्वको पति मान चुकी हूँ । इसीसे मैंने इसे शाल्वके पास भेजा था । मैंने धर्मका उल्लङ्घन नहीं किया है । भय, दया, लोभ अथवा कामके वश होकर धर्म नहीं छोड़ना चाहिये, यह मेरा निश्चित व्रत है ।' परशुरामने कहा—'यदि तुम मेरी आज्ञा नहीं मानोगे तो मैं अभी तुम्हारे भृत्य, मन्त्री और अनुचरोंके साथ तुम्हें मार डालूँगा ।' भीष्मने बड़ी अनुनय-विनय की और कहा कि 'मैं भयसे धर्म नहीं छोड़ सकता । आप मेरे गुरुजन हैं परंतु धर्मके लिये यदि आपसे भी युद्ध करना पड़े तो मैं कर सकता हूँ ।' भीष्मकी बात सुनकर परशुराम आगबबूला हो गये । उन्होंने युद्धका समय निश्चित कर दिया और उन्हें ठीक समयपर युद्धके लिये बुलाया । भीष्मने युद्धकी तैयारी की, वे युद्धके उपयोगी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर रथपर सवार होकर कुरुक्षेत्रके लिये चले । गुरुजनोंने आशीर्वाद दिया, ब्राह्मणोंने पुण्याहवाचन करके मङ्गलकामना प्रकट की और भीष्म कुरुक्षेत्रमें पहुँच गये ।

उस समय भीष्मकी माता गङ्गादेवी प्रकट होकर उनके सामने आयीं और कहने लगीं—'बेटा ! तुम यह क्या करने जा रहे हो । मैं अभी परशुरामके पास जाती हूँ, उनसे प्रार्थना करूँगी और उन्हें मनाऊँगी । परशुरामसे युद्ध मत करो ।' भीष्मने माताको हाथ जोड़कर सब बातें कहीं और परशुरामकी आज्ञाका अनौचित्य भी बताया । गङ्गादेवी परशुरामके पास गयीं; परंतु परशुरामने उनकी बात नहीं मानी । अन्तमें युद्धके लिये दोनों ही मैदानमें उतर पड़े ।

तेज और आपकी की हुई तपस्यापर प्रहार नहीं करता। शस्त्र धारण करनेसे ब्राह्मण क्षत्रिय-भावको प्राप्त हो जाता है; इसलिये मैं आपके क्षत्रिय-भावपर चोट करता हूँ, अब आप मेरे धनुषका प्रभाव और बाहुओंका बल देखिये। मैं आपका धनुष काटता हूँ।' इतना कहकर भीष्मने एक बाण चलाया और परशुरामका धनुष कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इस प्रकार दोनों घात-प्रतिघात करने लगे।

लगातार तेईस दिनोंतक युद्ध चलता रहा। दोनों शौच, स्नान, संध्या आदि नित्य कर्मोंको करके युद्धमें डट जाते थे और जबतक सायं-संध्याका समय नहीं आता, तबतक भिड़े रहते थे। एक दिन भीष्मने रातको बड़ी पवित्रताके साथ देवताओंकी प्रार्थना करके नींद ली। उन्होंने संकल्प किया कि 'यदि मैं परशुरामको हरा सकता हूँ तो देवतालोग मुझे स्वप्नमें दर्शन दें।' वे दाहिनी करवटसे सो गये। रातमें आठों वसुओंने ब्राह्मणके वेशमें भीष्मको दर्शन दिया और कहा कि 'तुम्हें पहले जन्ममें प्रस्वाप अस्त्रका ज्ञान था, उसका स्मरण करोगे तो वह तुम्हारे पास आ जायगा और उसके बलपर तुम परशुरामको जीत सकोगे। उसका प्रयोग करनेपर परशुराम युद्धभूमिमें सो जायँगे और तुम्हारी जीत होगी। सम्बोधन अस्त्रका प्रयोग करनेपर वे पुनः जग जायँगे। इस प्रकार तुम्हारी जीत भी हो जायगी और परशुरामकी मृत्यु भी नहीं होगी।'

दूसरे दिन युद्धमें परशुरामने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। भीष्मने भी उसे शान्त करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग किया। धरती और आकाश तप गये, चोटी-चोटीसे ज्वालाएँ दिखाई देने लगीं।

भीष्मने प्रस्वाप अस्त्र छोड़नेका विचार किया। उसी समय आकाशमें देवताओंने कहा—'भीष्म! तुम प्रस्वाप अस्त्रका प्रयोग मत करो।' भीष्मने उनपर ध्यान नहीं दिया। वे प्रस्वाप अस्त्रका प्रयोग करने ही जा रहे थे कि नारदने आकर उन्हें रोक दिया और उन आठों वसुओंने भी नारदजीकी बातका अनुमोदन किया। भीष्म भी मान गये। उस समय प्रस्वाप अस्त्रका प्रयोग न होनेसे परशुरामके मुँहसे एकाएक निकल गया कि 'भीष्मने मुझे जीत लिया।'

उस समय परशुरामके पितामहने युद्धभूमिमें प्रकट होकर परशुरामको युद्ध करनेसे मना किया और पितरों, देवताओं तथा ऋषियोंके बीच-बचावसे वह युद्ध बंद हो गया। भीष्मने जाकर परशुरामके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय परशुरामने प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए कहा—'वीरवर भीष्म! पृथ्वीपर तुम्हारे समान बली और योद्धा दूसरा क्षत्रिय नहीं है। इस युद्धमें तुमने मुझे संतुष्ट किया।' इसके बाद परशुरामने अम्बासे कहा—'राजकुमारी! मैंने अपनी शक्तिभर तुम्हारे लिये युद्ध किया, परंतु भीष्मको मैं नहीं हरा सका। इससे अधिक बल-पौरुष मुझमें नहीं है। अब तुम और जो कहो मैं करनेको तैयार हूँ।' अम्बाने कहा—'भगवन्! आपका कहना सत्य है, बड़े-बड़े देवता भी भीष्मको नहीं जीत सकते। अब मैं जाकर तपस्या करूँगी और वह शक्ति प्राप्त करूँगी जिससे भीष्मको मार सकूँ।' यह कहकर अम्बा चली गयी। भीष्म और परशुराम भी अपने-अपने स्थानपर लौट गये।

एक ओर तो भीष्म विचित्रवीर्यके लिये लड़ रहे थे, दूसरी ओर विचित्रवीर्य विषय-भोगोंमें लिप्त हो रहे थे। सारी पृथिवीका साम्राज्य, भीष्म-जैसा रक्षक, तरुण अवस्था और दो-दो सुंदरी स्त्रियाँ पाकर विचित्रवीर्य भूल गये इस संसारको, भूल गये अपने जीवनको और अपने जीवनके लक्ष्य भगवान्को। सामग्रियोंकी कमी थी नहीं, इच्छा करते ही स्वर्गसे भी कोई वस्तु आ सकती थी। इतने विषयोंमें पड़कर भला भगवान्के याद करनेकी क्या जरूरत रही! परंतु वे चाहे भूल जायँ—मौत उन्हें कब भूलती है। वह तो उनके सिरपर मँडरा रही थी। एक दिन उसने अपने दूत भेज ही दिये। राजा विचित्रवीर्यको क्षयरोग हो गया, जिस भोगके पीछे उन्होंने परमार्थकी उपेक्षा की, धर्म और अर्थको भूल गये, उसी भोगके फलस्वरूप यह क्षयकी बीमारी उन्हें प्राप्त हुई। संसारका यही स्वरूप है। जिस वस्तुसे पहले हमें सुख मिलता दीखता है, उसीसे पीछे दुःख मिलता है; क्योंकि संसार अनित्य एवं दुःखमय है। इसकी किसी वस्तुको अपना लो, एक क्षणतक अवश्य ही सुख प्रतीत हो सकता है। वह भी झूठ-मूठ—नाममात्रका, पीछे तो दुःख ही दुःख है। इसके विपरीत यदि परमात्माका आश्रय लिया जाय तो पहले कुछ दुःख-सा प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें सुख ही सुख है। परंतु जीव ऐसा अज्ञानी है, मोहमें फँसा हुआ है कि थोड़ेसे प्रतीयमान सुखके लिये अनन्त निरतिशय सुखका परित्याग कर देता है! विचित्रवीर्यकी यही दशा हुई। वे चलने-फिरनेमें भी असक्त हो गये। दिनोंदिन उनकी दुर्बलता बढ़ती ही गयी।

सत्यवतीके पिता दाशराजने शान्तनुसे जिसके वंशके, सन्तान-के लिये बड़े-बड़े मनसूबे बाँध रक्खे थे, बड़ी-बड़ी योजनाएँ बना रक्खी थीं, भीष्मसे प्रतिज्ञा करवायी थी कि हम राज्य न लेंगे, आजीवन ब्रह्मचारी रहेंगे, उसी सत्यवतीका वंश डूबने लगा। सत्यवती शोकमग्न हो गयी। भरतवंशका इस प्रकार लोप होते देखकर भीष्मको भी बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने विधि-विधानसे विचित्रवीर्यकी अन्त्येष्टि क्रिया की और भगवान्‌के ऊपर विश्वास रखकर वे निश्चिन्त हो गये। उनकी धारणा थी कि भगवान्‌के राज्यमें उनकी इच्छाके विपरीत कोई घटना घट नहीं सकती और जो घटना उनकी इच्छासे घटेगी, वह सर्वथा मङ्गलमय ही होगी। वे निश्चिन्त होकर भगवान्‌के भजनमें लग गये।

कौरव-पाण्डवोंका जन्म तथा विद्याध्ययन

धर्मके सम्बन्धमें बड़े-बड़े व्याख्यान दिये जा सकते हैं। सत्यके सम्बन्धमें बड़ी लंबी-चौड़ी डींग हाँकी जा सकती है; परंतु जब धर्मके अनुसार चलनेका प्रश्न आता है, सत्यपर स्थिर होनेका कठिन अवसर सामने उपस्थित होता है, तब बड़े-बड़े व्याख्यानदाता टरक जाते हैं। मैं उन्हें धर्मात्मा या सत्यप्रेमी नहीं कह सकता। उनका अन्तःकरण उनके वशमें नहीं है, स्वयं उनके हृदयमें धर्म और सत्यपर सच्ची आस्था नहीं है। वे धर्म और सत्यके सम्बन्धमें जो कुछ कहते हैं वह मान-सम्मान पानेके लिये कहते हैं अथवा दम्भ करते हैं। ऐसे धर्मध्वजी झूठे सत्यवादी ऐन मौकेपर धर्मसे च्युत हो जाते हैं, सत्यसे विमुख हो जाते हैं। ऊपर-ऊपरसे धर्मात्मा होनेका ढोंग चाहे जितने लोग कर लें, जीवनमें एक अवसर ऐसा आता है जब धार्मिकता और सचाईकी परीक्षा हो जाती है। जो उस समय धर्मपर दृढ़ रहा, सत्यपर अविचल भावसे प्रतिष्ठित रहा, वास्तवमें वही धर्मात्मा है, वही सत्यवादी है।

अपने पिता शान्तनुकी प्रसन्नताके लिये भीष्मने प्रतिज्ञा तो कर ली थी कि मैं राज्य नहीं लूँगा, विवाह नहीं करूँगा; परंतु अभी इस बातकी परीक्षाका असली मौका नहीं आया था। उनके पिता थे, उनकी माँ थीं, वे राज्य करते थे। उसके लिये इनके सामने कोई प्रश्न ही नहीं था। जब पिता मर गये तो एक भाई राजा हुआ। भाई मर गया तो दूसरा भाई राजा हुआ। उस समयतक इनके सामने कोई प्रश्न नहीं था। विचित्रवीर्यकी मृत्युके पश्चात् भरतवंशमें अकेले भीष्म ही बच रहे थे। साम्राज्यके लोभकी दृष्टिसे

नहीं—यदि कर्तव्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो भी समस्त प्रजाका पालन इन्हींके सिर आ पड़ा था। भोग-विलासके लिये इन्हें संतानोत्पादन आवश्यक था सो बात नहीं, वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये भी विवाह करना अनिवार्य हो गया था। ऐसी स्थितिमें यदि वे राजा बन जाते और बच्चे पैदा करते तो संसारमें उन्हें कोई बुरा नहीं कहता; परंतु भीष्म सत्यनिष्ठ थे, सच्चे धर्मात्मा थे। उनके मनमें यह कल्पना भी नहीं उठी कि मुझे राज्य करना है अथवा संतान उत्पन्न करना है।

भीष्मके सामने एक और कठिन समस्या आयी। जिस माताके लिये उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, जिसकी आज्ञासे अपने लिये आवश्यकता न होनेपर भी काशिराजकी कन्याओंका हरण किया था। जिनकी इच्छा पूर्ण करनेमें उन्हें किसी प्रकारकी हिचकिचाहट नहीं होती थी, वही माता सत्यवती उनके पास आयीं और उन्होंने कहा—'बेटा! तुम पुत्र उत्पन्न करो।' सत्यवतीने भीष्मको समझाते हुए कहा—'बेटा! तुम धर्मज्ञ हो, अपने वंश और धर्मकी रक्षा तुम्हारे लिये आवश्यक है। बहुत दिनोंसे जिस सिंहासनपर बड़े-बड़े वीर सम्राट् बैठते आये हैं क्या वह अब सूना हो जायगा? ब्रह्मासे लेकर आजतक जिस वंशका दीपक जलता रहा, क्या अब वह बुझ जायगा? तुम अंगिरा और शुक्राचार्यके समान विपत्तिके समय धर्मपर विचार कर सकते हो। मैं तुम्हारी गम्भीरतासे परिचित हूँ। अब ऐसा करो कि धर्म और वंशका लोप न हो।' माताकी आज्ञा सुनकर भी भीष्मके मनमें तनिक भी द्विविधा नहीं हुई। उन्होंने कहा—'माता! तुम्हारा कहना अक्षरशः उचित है, परंतु मैं अपनी प्रतिज्ञासे बँध चुका हूँ। माता! तुम्हारे कन्यादानके समय तुम्हारे ही लिये मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे मैं कदापि छोड़ नहीं सकता।'

भीष्मने आगे कहा—"मैं त्रिलोकीका राज्य छोड़ सकता हूँ, देवताओंका राज्य छोड़ सकता हूँ और इससे भी अधिक कुछ हो उसका परित्याग कर सकता हूँ; परंतु मैं किसी प्रकार सत्यका परित्याग नहीं कर सकता। पृथ्वी गन्धको छोड़ दे, जल रसको छोड़ दे, तेज रूपको छोड़ दे, वायु स्पर्शको छोड़ दे, सूर्य ज्योतिको छोड़ दे, धूमकेतु उष्णताको छोड़ दे, आकाश शब्दको छोड़ दे और चन्द्रमा शीतलताको छोड़ दे, इन्द्र अपना पराक्रम छोड़ दें, धर्मराज अपने धर्मको छोड़ दें; परंतु मैं कदापि सत्य छोड़नेका, अपनी की हुई प्रतिज्ञा तोड़नेका संकल्प भी नहीं कर सकता।" *

अपने धर्मज्ञ और सत्यवादी पुत्रके ये वचन सुनकर सत्यवतीने कहा—"बेटा! मैं तुम्हारी सत्यनिष्ठा जानती हूँ, तुम चाहो तो अपने तपोबल और प्रभावसे तीनों लोक और उनके अन्तर्गत पदार्थोंकी सृष्टि कर सकते हो। मुझे पता है कि तुमने मेरे ही लिये प्रतिज्ञा की थी, किंतु अब इस कुलका लोप न हो, ऐसा तुम्हें करना ही चाहिये।" भीष्मने कहा—"माता! तुम धर्मको देखो, कुलके मोहमें पड़कर मुझे अधर्मके मार्गमें मत चलाओ। सत्य सब धर्मोंसे बढ़कर है, इतने

---

* परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन॥
त्यजेच पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत्॥
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मताम्।
त्यजेच्छब्दं तथाकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत्॥
विक्रमं वृत्रहा जह्याद्धर्मं जह्याच धर्मराट्।
न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन॥

उत्तम वंशमें पैदा होकर मैं सत्य कैसे छोड़ूँ।' इतना कहकर भीष्मने सत्यवतीको समझाया कि तुम किसी धर्मात्मा तपस्वी ब्राह्मणकी शरण लो। उसके कृपा-प्रसादसे वंशकी रक्षा हो जायगी।

भीष्मकी बात सुनकर सत्यवती कुछ विचारमें पड़ गयी। अन्तमें कुछ लज्जित भावसे सिर नीचा करके धीमे स्वरसे बोली—'बेटा भीष्म! तुमसे कोई बात छिपी तो है नहीं, इसलिये मैं बतलाती हूँ। मैं दाशराजकी कन्या नहीं हूँ, मैं उपरिचर वसुकी पुत्री हूँ। मछलीके गर्भसे मेरा जन्म हुआ और मेरे पिताने मुझे दाशराजको दे दिया। वे बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने यमुनामें एक नाव रख छोड़ी थी, मैं उसी नावपर रहती। जो कोई यात्री आता उसे बिना पैसा-कौड़ी लिये नदीसे पार उतार दिया करती थी। यह काम करते-करते मैं जवान हो गयी। एक दिन महर्षि पराशर उसी रास्ते आये, उनकी कृपादृष्टि मुझपर पड़ गयी। बेटा! ऐसा नहीं समझना कि महर्षि पराशरके मनमें कोई दूषित भाव आया; क्योंकि वे बड़े पुण्यात्मा महर्षि हैं। कभी-कभी लोगोंकी दृष्टिमें कुछ बुरा काम होनेपर भी वासनारहित होनेके कारण वह जगत्के लिये परम मङ्गलस्वरूप हो जाता है। जब उन्होंने मुझसे अपनी इच्छा प्रकट की, तब मैं अपने पिता और धर्मसे डर गयी; परंतु उनके शापसे भी कम भय नहीं हुआ। उनके वर देनेपर मैंने उनकी बात मान ली और उनके वीर्यसे मेरे गर्भसे व्यासदेव उत्पन्न हुए। ऋषिने मुझे वर दे दिया कि इससे तुम्हारा कन्याभाव दूषित नहीं होगा। मेरा पुत्र व्यास बड़ा ही तपस्वी और धर्मात्मा है, यदि तुम्हारी अनुमति हो तो मैं उसे बुलाऊँ और उसीसे वंश-रक्षाका काम कराया जाय।' भीष्मने अनुमति दे दी।

सत्यवतीने व्यासका स्मरण किया और वे माताके स्मरण करते ही ब्रह्मसूत्रोंकी रचना छोड़कर वहाँ आ गये। माताने अपने प्यारे पुत्रको बहुत दिनोंके बाद पाकर मारे प्रेमके हृदयसे लगा लिया। स्नेहके मारे उनके स्तनोंसे दूधकी धार निकल पड़ी, आँसू बहने लगे। व्यासने अपनी माताको प्रणाम करके उनसे अपने योग्य सेवाकी आज्ञा माँगी। सत्यवतीने उनसे आग्रह किया कि वे लुप्त होते हुए भरतवंशकी रक्षा करें। व्यासजीने कहा—'यदि तुम्हारी बहुएँ मेरे बूढ़े और विकृत देहको देखकर घृणा न करें, मेरे शरीरसे निकलती हुई गन्धको सह लें, मेरे रूपको देखकर डरें नहीं, तो उन्हें गर्भ रह जायगा। उनसे कह दो कि वे नग्न होकर मेरी आँखोंके सामनेसे निकल जायँ, बस, वे मेरी दृष्टिसे ही गर्भवती हो जायँगी।'

सत्यवतीने अम्बिकाको जाकर समझाया और किसी प्रकार डाँट-डपटकर उसे इस बातपर राजी किया कि वह वस्त्ररहित होकर व्यासजीके सामनेसे निकल जाय, परंतु उसका हृदय यह बात स्वीकार नहीं कर रहा था। वह बड़े संकोचसे अपनी आँखें बंद करके उनके सामने गयी। व्यासकी कृपादृष्टिसे उसे गर्भ रह गया। जब माताने व्याससे पूछा, तब उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टिसे देखकर कह दिया कि यह आँखें बंद करके मेरे सामने गयी थी, इसलिये इसका पुत्र अंधा होगा; परंतु उसके सौ पुत्र होंगे। माताने प्रार्थना की, एक पुत्र और उत्पन्न करो बेटा! क्योंकि अंधा तो राजा हो ही नहीं सकता। अम्बालिकाके ऋतुधर्म होनेपर फिर व्यासदेव आये। सत्यवतीकी प्रेरणासे वह उनके सामने आँखें खोले हुए गयी तो अवश्य, परंतु मारे डरके उसका शरीर पीला पड़ गया। व्यासने

कहा—'तुम मुझे देखकर मारे डरके पीली पड़ गयी, इसलिये तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र होगा वह पाण्डुवर्णका होगा।' माताको जब यह समाचार मालूम हुआ, तब उन्होंने व्यासजीसे पुनः प्रार्थना की कि 'तुम एक पुत्र और उत्पन्न करो।' व्यासदेवने इस बार भी स्वीकार कर लिया।

कुछ समय बीतनेपर अम्बिकाने पुनः ऋतुस्नान किया और सत्यवतीने व्यासदेवका स्मरण कर उन्हें बुलाया। इस बार भी अम्बिकाकी हिम्मत उनके सामने जानेकी नहीं पड़ी। उसने अपनी एक सर्वाङ्ग-सुन्दरी दासी उनके सामने भेज दी। व्यासदेव उसके आचरणसे बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने वर दिया कि आजसे तुम दासभावसे छूट जाओगी। तुम्हारा बालक संसारमें परम धार्मिक और बड़ा बुद्धिमान् होगा। व्यासजी महाराज चले गये। अम्बिकाके गर्भसे धृतराष्ट्र, अम्बालिकाके गर्भसे पाण्डु और दासीके गर्भसे विदुरका जन्म हुआ। महात्मा भीष्म बड़े प्रेमसे भगवत्-भजन करते हुए इनका पालन-पोषण करने लगे।

पाण्डु और विदुरकी उत्पत्तिसे देशका बड़ा मङ्गल हुआ। पृथ्वीमें असीम अन्न पैदा होने लगा। उनमें सरसता और शक्ति विशेषरूपसे आ गयी, वर्षा ठीक समयसे होने लगी। वृक्ष फल-फूलसे लद गये, पशु-पक्षी प्रसन्नतापूर्वक विचरने लगे। फूलोंमें अपूर्व सुगन्ध और फलोंमें अनोखा स्वाद आ गया। चारों ओर कलाकार, विद्वान् और सदाचारियोंकी वृद्धि होने लगी। चोर-डाकुओंका भय मिट गया। किसीके मनमें भी पाप नहीं आता था। सर्वत्र यज्ञ-यागादि पुण्य कर्म होते रहते थे। अभिमान, क्रोध और लोभ कम हो गया था। सब लोग त्याग करके दूसरोंको संतुष्ट रखते थे।

वहाँ कोई कंजूस या विधवा स्त्री नहीं थी। सबका घर अतिथियोंके लिये खुला रहता था। भीष्मने बचपनसे ही उनकी शिक्षा-दीक्षाका बड़ा ध्यान रक्खा था। वे जवान होते-होते सब शास्त्रों एवं शस्त्रोंमें पारङ्गत हो गये। विशेष करके पाण्डु धनुषयुद्धमें बड़े निपुण थे, धृतराष्ट्र शरीरबलमें और विदुर धर्मनीतिमें। वयस्क होनेपर भीष्मने पाण्डुको ही राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया। धृतराष्ट्र अंधे थे और विदुर दासीपुत्र थे, इसलिये धर्मतः वे राज्यके अधिकारी नहीं माने गये।

भीष्मने तीनोंकी सम्मति लेकर उनका विवाह कर दिया। धृतराष्ट्रका विवाह गान्धारीसे हुआ, पाण्डुका विवाह मद्रराजकी कन्या शल्यकी बहिन माद्रीसे और श्रीकृष्णकी बुआ कुन्तीसे हुआ। यदुवंशियोंकी एक सर्वगुणसम्पन्न दासीकन्याके साथ विदुरका विवाह हुआ। तीनों ही सुखपूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करने लगे और भीष्म उनकी ओर दृष्टि रखते हुए शान्तभावसे रहने लगे।

समयपर धृतराष्ट्रके सौ पुत्र हुए। वे एक-से-एक बढ़कर वीर थे। भला ऐसा कौन भारतीय होगा जिसने दुर्योधन और दुःशासनका नाम न सुना हो। महाराज पाण्डुके वीर्यसे कोई संतान नहीं हुई। उनका स्वभाव बड़ा विचित्र था। इन्हें शिकार खेलनेमें बड़ा मजा आता। ये प्रायः पर्वतोंमें ही रहते, परंतु यह व्यसन वास्तवमें बड़ा बुरा है। प्राणियोंकी हत्या भी कभी धर्म हो सकती है ! पाण्डु इस दोषसे ग्रस्त हो गये थे और इसका कुफल भी उन्हें भोगना ही पड़ा। एक दिन मृगरूपधारी ऋषिपर उन्होंने बाण चला दिया और उस ऋषिने मरते समय उन्हें शाप दे दिया कि यदि तुम पुत्र उत्पन्न

कहा—'तुम मुझे देखकर मारे डरके पीली पड़ गयी, इसलिये तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र होगा वह पांडुवर्णका होगा ।' माताको जब यह समाचार मालूम हुआ, तब उन्होंने व्याससे पुनः प्रार्थना की कि 'तुम एक पुत्र और उत्पन्न करो ।' व्यासदेवने इस बार भी स्वीकार कर लिया ।

कुछ समय बीतनेपर अम्बिकाने पुनः ऋतुस्नान किया और सत्यवतीने व्यासदेवका स्मरण कर उन्हें बुलाया । इस बार भी अम्बिकाकी हिम्मत उनके सामने जानेकी नहीं पड़ी । उसने अपनी एक सर्वाङ्गसुन्दरी दासी उनके सामने भेज दी । व्यासदेव उसके आचरणसे बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने वर दिया कि आजसे तुम दासभावसे छूट जाओगी । तुम्हारा बालक संसारमें परम धार्मिक और बड़ा बुद्धिमान होगा । व्यासजी महाराज चले गये । अम्बिकाके गर्भसे धृतराष्ट्र, अम्बालिकाके गर्भसे पाण्डु और दासीके गर्भसे विदुरका जन्म हुआ । महात्मा भीष्म बड़े प्रेमसे भगवत्-भजन करते हुए इनका पालन-पोषण करने लगे ।

पाण्डु और विदुरकी उत्पत्तिसे देशका बड़ा मङ्गल हुआ । पृथ्वीमें असीम अन्न पैदा होने लगा । उनमें सरसता और शक्ति विशेषरूपसे आ गयी, वर्षा ठीक समयसे होने लगी । वृक्ष फल-फूलसे लद गये, पशु-पक्षी प्रसन्नतापूर्वक विचरने लगे । फूलोंमें अपूर्व सुगन्ध और फलोंमें अनोखा स्वाद आ गया । चारों ओर कलाकार, विद्वान् और सदाचारियोंकी वृद्धि होने लगी । चोर-डाकुओंका भय मिट गया । किसीके मनमें भी पाप नहीं आता था । सर्वत्र यज्ञ-यागादि पुण्य कर्म होते रहते थे । अभिमान, क्रोध और लोभ कम हो गया था । सब लोग त्याग करके दूसरोंको संतुष्ट रखते थे ।

वहाँ कोई कंजूस या विधवा स्त्री नहीं थी। सबका घर अतिथियोंके लिये खुला रहता था। भीष्मने बचपनसे ही उनकी शिक्षा-दीक्षाका बड़ा ध्यान रक्खा था। वे जवान होते-होते सब शास्त्रों एवं शस्त्रोंमें पारङ्गत हो गये। विशेष करके पाण्डु धनुर्युद्धमें बड़े निपुण थे, धृतराष्ट्र शरीरबलमें और विदुर धर्मनीतिमें। वयस्क होनेपर भीष्मने पाण्डुको ही राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया। धृतराष्ट्र अंधे थे और विदुर दासीपुत्र थे, इसलिये धर्मतः वे राज्यके अधिकारी नहीं माने गये।

भीष्मने तीनोंकी सम्मति लेकर उनका विवाह कर दिया। धृतराष्ट्रका विवाह गान्धारीसे हुआ, पाण्डुका विवाह मद्रराजकी कन्या शल्यकी बहिन माद्रीसे और श्रीकृष्णकी बुआ कुन्तीसे हुआ। यदुवंशियोंकी एक सर्वगुणसम्पन्न दासीकन्याके साथ विदुरका विवाह हुआ। तीनों ही सुखपूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करने लगे और भीष्म उनकी ओर दृष्टि रखते हुए शान्तभावसे रहने लगे।

समयपर धृतराष्ट्रके सौ पुत्र हुए। वे एक-से-एक बढ़कर वीर थे। भला ऐसा कौन भारतीय होगा जिसने दुर्योधन और दुःशासनका नाम न सुना हो। महाराज पाण्डुके वीर्यसे कोई संतान नहीं हुई। उनका स्वभाव बड़ा विचित्र था। इन्हें शिकार खेलनेमें बड़ा मजा आता। ये प्रायः पर्वतोंमें ही रहते, परंतु यह व्यसन शास्त्रमें बड़ा बुरा है। प्राणियोंकी हत्या भी कभी धर्म हो सकती है! पाण्डु इस दोषसे मस्त हो गये थे और इसका कुफल भी उन्हें भोगना ही पड़ा। एक दिन मृगरूपधारी ऋषिपर उन्होंने बाण चला दिया और उस ऋषिने मरते समय उन्हें शाप दे दिया कि यदि तुम पुत्र उत्पन्न

करनेके लिये स्त्रीका सहवास करोगे तो मर जाओगे। उसी दिनसे पाण्डु संयमपूर्वक रहने लगे और माद्री एवं कुन्ती उनकी सेवा करने लगीं।

कुन्तीको दुर्वासाके बतलाये हुए मन्त्रके प्रभावसे देवताओंके आवाहनकी शक्ति प्राप्त थी। वह जब चाहती चाहे जिस देवताको बुला लेती। इस बातकी परीक्षा भी उसने सूर्यको बुलाकर कर ली थी, जिनकी कृपासे कर्णकी उत्पत्ति हुई थी। अब उसने अपने धर्मात्मा पति पाण्डुकी अनुमति लेकर क्रमशः धर्म, इन्द्र और वायुका आवाहन किया तथा उनकी कृपासे युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम तीन पुत्र प्राप्त किये। उसीने अश्विनीकुमारोंका आवाहन कर माद्रीको भी दो पुत्र प्राप्त कराये, जिनका नाम नकुल और सहदेव था। थोड़े ही दिनोंके बाद पाण्डुकी मृत्यु हो गयी। जबतक पाण्डु पर्वतपर रहते थे, तबतक भीष्मकी देख-रेखमें विदुरकी सम्मतिसे धृतराष्ट्र ही प्रजापालन करते थे और पाण्डुको जो आवश्यकता होती थी, वहीं भेज देते थे। अब ऋषियोंने पाण्डुके पुत्रोंको कुन्तीके साथ हस्तिनापुरमें पहुँचा दिया और उनके बालक होनेके कारण राज्यका सारा कारबार धृतराष्ट्रके ही हाथ रहा। हस्तिनापुर आकर पाँचों पाण्डव और दुर्योधन आदि सौ कौरव एक साथ ही विद्याध्ययन एवं धनुर्विद्याका अभ्यास करने लगे। वे भीष्मपर बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखते थे, उनकी आज्ञाओंका पालन करते थे और भीष्म भी बड़े स्नेहसे, बड़े लाड़-प्यारसे उन्हें रखते थे। इस प्रकार कौरव और पाण्डवोंका बचपन बीतने लगा।

पाण्डवोंके उत्कर्षसे दुर्योधनको जलन, पाण्डवोंके साथ दुर्व्यवहार और भीष्मका उपदेश

मनुष्यकी प्रकृति बहुत विलक्षण है। अनादिकालसे संसारके थपेड़े खाते रहनेपर भी यह होश नहीं सँभालता। न जाने किस बुरे क्षणमें इसे अपने स्वरूपकी विस्मृति हुई थी कि यह अपनेको भूलकर झूठमूठ अपनेसे भिन्न पदार्थोंको देखने लगा। यदि यह बात यहींतक सीमित होती तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं होती, परंतु इसकी परम्परा बढ़ती ही गयी। अपनेको ही अपनेसे भिन्न देखा और उस भिन्न प्रतीत होनेवाली वस्तुमें 'यह अच्छा है यह बुरा है, यह अपना है यह पराया है'—इस प्रकारकी कल्पना हुई। फिर अच्छेके लिये, अपनी रक्षाके लिये चेष्टा होने लगी और बुरेको हटानेके लिये, परायेके नाशके लिये विकलताका अनुभव होने लगा। जीवकी इस आरम्भिक प्रवृत्तिने समस्त योनियोंमें ऐसे ही भाव भर दिये और मनुष्य-योनिमें जहाँ विशेष बुद्धि है और जहाँ इसे नहीं रहना चाहिये वहाँ तो इसे विशेषरूपमें प्रकट कर दिया। बस, अब जितनी चेष्टाएँ होती हैं, इसी मूल वासनाके आधारपर होती हैं और मनुष्य राग-द्वेषका पुतला बन गया है। भगवान्की बड़ी कृपासे संतोंके महान् अनुग्रहसे और शुद्ध अन्तःकरणसे विवेक करनेपर तब कहीं ये राग-द्वेषके संस्कार समूल नष्ट होते हैं, तब मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता, महात्मा हो जाता है, आत्मा या परमात्मा हो जाता है। परंतु साधारण पुरुष इन्हीं दोनों भावोंसे प्रभावित हैं और उनकी प्रवृत्तियाँ इन्हींके द्वारा संचालित हो रही हैं। जिनमें राग-द्वेषकी प्रवृत्तियाँ बहुत अधिक हैं; वे आसुरी

सम्पत्तिके पुरुष हैं और जिनमें वे बहुत कम हैं, वे दैवी सम्पत्तिके पुरुष हैं। इन दोनोंमें परस्पर संघर्ष भी होता है और अन्तमें दैवी सम्पत्तिवालोंकी जीत होती है। हम अगले अध्यायोंमें देखेंगे कि पाण्डवोंमें दैवी सम्पत्तिका कितना विकास हुआ है और कौरवोंमें कितना। रागद्वेषके संस्कारोंसे किसका अन्तःकरण कितना प्रभावित है। जो इनसे ऊपर उठे हुए हैं वे तो महात्मा हैं ही—यहाँ उनके अंदर रहनेवालोंके तारतम्यका कुछ दिग्दर्शनमात्र होगा।

व्यासदेवकी सलाहसे सत्यवती, अम्बिका और अम्बालिका तीनों ही तपस्या करने चली गयीं और कठोर तप करके सद्गतिको प्राप्त हुईं। कुन्ती समान भावसे पाँचों पाण्डवोंपर स्नेह करती, उनके सुख-दुःखका ध्यान रखती और उन्हें देख-देखकर सुखी होती रहती। भीष्म पाण्डव और कौरव दोनोंसे ही स्नेह रखते और भगवान्‌का भजन किया करते। विदुरकी सलाहसे धृतराष्ट्र प्रजापालन करते और सब लोग बड़े आनन्दसे रहते। सब बालकोंके वेदोक्त संस्कार हुए, वे राजभोग भोगते हुए अपने पिताके घरमें बढ़ने लगे। बचपनसे ही पाण्डवोंके प्रति कौरवोंमें ईर्ष्या-द्वेषका बीजारोपण होने लगा। कारण यह था कि दौड़नेमें, निशाना लगानेमें, खाने-पीनेमें, धूल उछालनेमें भीमसेन सबसे बढ़कर थे। भीमसेनका बल देखकर कौरवोंके मनमें जलन होती। खेल-खेलमें कभी सामना हो जाता तो अकेले भीम एक सौ एक कौरवोंको हरा देते। वे हँसते-हँसते उनका सिर पकड़ लेते, उन्हें गिरा देते। दस-दसको दोनों हाथोंमें पकड़कर पानीमें गोता लगाते और उनके बेदम होनेपर निकालते। जब वे छोटे-छोटे पेड़ों-

पर चढ़कर अपने खानेके लिये फल तोड़ने लगते, तब भीमसेन पेड़की जड़ पकड़कर हिला देते और बहुतसे फलोंके साथ वे भी नीचे आ जाते। भीमसेनके मनमें द्वेषभाव तनिक भी नहीं था, केवल लड़कपन था, परंतु कौरव उनके इस लड़कपनसे चिढ़ते थे। धीरे-धीरे उनके मनमें शत्रुताका भाव दृढ़ होने लगा।

दुर्योधनका मन दूषित हो गया। वह चाहने लगा कि किसी प्रकार भीम मारे जायँ। उसके मनमें यह बात भी आती कि यदि पाण्डव किसी प्रकार कैद कर लिये जायँ तो मेरा राज्य निष्कण्टक हो जाय। एक बार उसने ऐसा षड्यन्त्र किया कि भीमको विष खिला दिया और उन्हें लताओंसे बाँधकर गङ्गाजीमें फिंकवा दिया; परंतु इससे भीमका अहित नहीं हुआ। भीमसेन वहाँसे पारेका रस पीकर लौटे, जिससे उनके शरीरका बल बहुत ही बढ़ गया। युधिष्ठिरने भीमसेनको ऐसा समझा दिया कि यह बात किसी-पर प्रकट न की जाय, नहीं तो अपनी ही बदनामी है। दुर्योधन क्या कोई दूसरे थोड़े ही हैं। इस प्रकार दुर्योधनने कर्ण और शकुनिकी सलाहसे कई बार उनका अनिष्ट करना चाहा, परंतु विदुरकी सलाहसे पाण्डव बचते गये।

यह सब बातें भीष्मको भी मालूम होती थीं। उन्होंने सोचा कि अभी बच्चे हैं, बेकार रहते हैं इसलिये इनके मनमें अनेकों दुर्भाव आया करते हैं। इन्हें अब किसी काममें लगा देना चाहिये। ऐसा सोचकर उन्होंने इन बालकोंको धनुर्वेद सिखानेका काम कृपाचार्यको सौंप दिया। उनके पास कौरव और पाण्डव वेद, उपवेद और

जब द्रौपदीके स्वयंवरमें पाँचों पाण्डव प्रकट हुए और इसका समाचार हस्तिनापुरके लोगोंको मिला, तब धृतराष्ट्र और दुर्योधनको बड़ी चिन्ता हुई। वे तो समझते थे कि वारणावत नगरके लाक्षागृहमें पाण्डव जल गये और अब हमारा राज्य निष्कण्टक हो गया, परंतु पाण्डव बचे हुए थे। अब वे सोचने लगे कि पाण्डवोंको किस प्रकार नष्ट किया जाय। परिस्थिति बड़ी संगीन थी। भीष्मको बुलाया गया। भीष्मने कहा—'मेरे लिये कौरव और पाण्डव एक-सरीखे हैं, मैं दोनोंसे ही प्रेम करता हूँ। मैं तुम्हारी ही भाँति पाण्डवोंकी भी रक्षा चाहता हूँ। तुम उनसे लड़ाई मत करो, मेल करके आधा राज्य दे दो।' उन्होंने आगे कहा—'दुर्योधन ! जैसे तुम अपनेको इस राज्यका उत्तराधिकारी समझते हो, वैसे ही युधिष्ठिर भी हैं। यदि यह राज्य उन्हें नहीं मिलेगा तो तुम्हें ही कैसे मिल सकता है। तुमने अधर्मसे इसे हथिया लिया है, यह उन्हें अवश्य मिलना चाहिये। धृष्टतासे नम्रता उत्तम है। अपकीर्तिसे कीर्ति उत्तम है। कलङ्कित राजाका जीवन भार है। अपने पूर्वपुरुषोंके योग्य आचरण करना चाहिये। यह बड़े आनन्दकी बात है कि पाण्डव सकुशल जीवित हैं। दुष्ट पुरोचन जो उन्हें लाक्षागृहमें जलाना चाहता था, वह आप मर गया। जबसे मैंने सुना कि कुन्तीके साथ पाँचों पाण्डव जल गये, तबसे मैं बड़ा दुखी रहता था। मेरे विचारसे उसमें पुरोचनका कोई दोष नहीं था, तुमलोगोंका ही दोष था। उनके जीवित रहनेके समाचारसे तुम्हारी अपकीर्ति मिट गयी, अब तुम आनन्द-उत्सव मनाओ। पाण्डव बड़े धार्मिक, एकहृदय और एक

दूसरेसे अत्यन्त प्रेम रखनेवाले हैं। उनका इस राज्यमें समान भाग है, वह उन्हें मिलना ही चाहिये। उन्हें जीतनेकी सामर्थ्य भी तुम लोगोंमें नहीं है। वे अधर्मपूर्वक इस राज्यसे निकाले गये हैं, उनका हिस्सा अवश्य-अवश्य मिलना चाहिये। दुर्योधन! यदि तुम्हारे हृदयमें धर्मके प्रति तनिक भी आस्था है, यदि तुम अपने बूढ़े पितामहको प्रसन्न रखना चाहते हो और यदि संसारमें कौरवोंकी कीर्ति एवं कल्याण चाहते हो तो पाण्डवोंका आधा राज्य उन्हें दे दो।'

द्रोणाचार्य और विदुरने भीष्मपितामहकी बातका समर्थन किया। दुर्योधनकी आन्तरिक इच्छा न होनेपर भी उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उसने पाण्डवोंको बुलाना स्वीकार कर लिया। विदुर भेजे गये, श्रीकृष्ण एवं द्रुपद आदिकी सलाहसे पाण्डव हस्तिनापुर आये। भीष्मको बड़ी प्रसन्नता हुई। पाण्डव द्रौपदीके साथ सुखपूर्वक रहने लगे, वे एक प्रकारसे दुर्योधनके किये हुए अपकारोंको भूल गये। श्रीकृष्णकी सहायतासे खाण्डव वनका दाह करके मयकी बनायी हुई दिव्य सभामें राजकाज करने लगे। पाँचों भाइयोंके पाँच पुत्र हुए। बड़े-बड़े राजाओंको परास्त करके उन्होंने अपने राज्यका विस्तार कर लिया। दैवीसम्पत्तिकी अभिवृद्धि हुई। उनकी उन्नति देखकर भीष्म-पितामह बहुत प्रसन्न रहते और भगवत्कृपाका अनुभव करते हुए तीर्थयात्रा, सत्सङ्ग और भजनमें लगे रहते। इस प्रकार दिन बीतने लगे।

युधिष्ठिरका राजसूय-यज्ञ, श्रीकृष्णकी अग्रपूजा, भीष्मके द्वारा श्रीकृष्णके स्वरूप तथा महत्त्वका वर्णन, शिशुपालवध

संसारमें अनेकों प्रकारके सुख दीखते हैं। उन्हें बहुत रूपोंमें देखा जा सकता है। शारीरिक, ऐन्द्रियिक, आन्तरिक, बौद्धिक आदि उनके भेद हो सकते हैं। इस जगत्‌में जिन्हें सबसे अच्छी स्थिति प्राप्त होती है, उन्हें यही सब सुख मिलते हैं। शरीर बलवान् हो, इन्द्रियाँ नीरोग एवं विषयोंका सुख भोगती हों। धन, परिवार, साम्राज्य, मान, प्रतिष्ठा आदिसे मन संतुष्ट हो, बुद्धिको विविध वस्तुओंके विज्ञानका बोध हो, राजनीति, समाजनीति आदिमें पटुता प्राप्त हो। सब लोग उसकी सम्मति मानते हों तो सांसारिक दृष्टिसे कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति सुखी है; परंतु सुखकी पूर्णता यहीं नहीं है। इन सब वस्तुओंके साथ, चाहे वे वस्तुएँ भोगे जाने-वाले विषयोंके रूपमें हों या भोगनेवाले करणों या करणोंके अभिमानियों-के रूपमें हों, मृत्यु लगी हुई है। देवताओंके प्रसादसे इच्छा-मृत्यु भी प्राप्त हो सकती है, परंतु उसके प्राप्त होनेपर भी सुखकी सीमा नहीं मिलती। विचार करनेपर ऐसा जान पड़ता है कि यदि कदाचित् किसी प्रकार संसारकी उपर्युक्त वस्तुएँ स्थायीरूपसे प्राप्त हो जायँ और मृत्यु भी अपने हाथोंमें आ जाय तो भी कुछ-न-कुछ कमी बनी ही रहती है, कुछ-न-कुछ अभाव खटकता ही रहता है। इन सब वस्तुओंके पानेपर भी कुछ पाना शेष रह जाता है। संतोंने, शास्त्रोंने इस तत्त्वपर प्रारम्भसे ही विचार किया है और बड़े सौभाग्यकी बात है कि वे इस विषयमें सहमत हैं कि इन बाह्य वस्तुओंसे शान्ति नहीं मिल सकती, ये संसारके सुख तुच्छ सुख हैं, क्षणिक सुख हैं। इनमें

सुख-शान्तिकी आशा करना मरुस्थलमें प्रतीयमान जलसे प्यास बुझाना है। न आजतक इनमें किसीको सुख हुआ है न होनेकी आशा है।

तब प्रश्न यह होता है कि अन्ततः सुख-शान्ति है कहाँ ? बुद्धिके ज्ञातव्यकी, मनके प्राप्तव्यकी और इन्द्रियोंके गन्तव्यकी पूर्णता कहाँ है ? क्योंकि बिना उसके प्राप्त हुए जीवन सफल नहीं हो सकता। इसका उत्तर एक ही है, वह यह कि अन्तस्तलके भी अन्तरमें विराजमान आत्माके भी आत्मा आनन्दकन्द सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जाना जाय, प्राप्त किया जाय और उनके ही पास पहुँचा जाय। उन्हींको प्राप्त कर लेनेपर इन विषयसुखोंके क्षुद्र बिन्दुका अनन्त महासागर प्राप्त हो जाता है और उसके साथ ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। तात्पर्य यह कि बुद्धिसे भगवान् श्रीकृष्णको जाना जाय, मन उन्हें ही प्राप्त कर ले और इन्द्रियाँ उन्हींके पास पहुँच जायँ। वास्तवमें तब हम सब कुछ प्राप्त कर सकेंगे।

भीष्मके जीवनमें क्या नहीं प्राप्त था ! परंतु यह दूसरोंकी भाँति केवल सांसारिक सुखकी ही प्राप्तिमात्र नहीं थी, बल्कि वे उनके प्राप्त होनेपर भी उनकी ओरसे उदासीन रहकर बुद्धिसे भगवान्‌को ही सोचते थे, मनसे भगवान्‌की लीलाका अनुभव करते थे और इन्द्रियोंसे सर्वत्र उन्हींका स्पर्श प्राप्त करते थे। उनका श्रीकृष्णसे कितना प्रेम था, यह बात उनके जीवनमें स्थान-स्थानपर प्रकट होती है। वे श्रीकृष्णके परम प्रेमी थे, परम तत्त्वज्ञ थे और परम आज्ञाकारी थे। उनके तत्त्वज्ञान, प्रेम और आज्ञाकारिताकी बात सभी लोगोंके लिये आदर्श है और उनके जीवनमें हम इसी बातका आदर्श देखना चाहते हैं।

धर्मराज युधिष्ठिरकी सभा बन गयी। भाइयोंका बल-पौरुष और श्रीकृष्णकी सहायता उन्हें प्राप्त थी ही। सच्ची बात तो यह है कि वे श्रीकृष्णके भक्त थे, उनकी प्रेरणासे उनके लिये किये जानेवाले कर्म राजसूय-यज्ञकी ओर प्रवृत्त हुए। भाइयोंने दिग्विजय किया, श्रीकृष्णकी सहायतासे भीमने जरासन्धको मारा। सैकड़ों राजा कैदखानेसे छूटे, उनकी सहानुभूति प्राप्त हुई, बड़े विस्तारसे राजसूय-यज्ञ हुआ। यज्ञके अन्तिम दिन जब अतिथि-अभ्यागतोंके स्वागत-सत्कारका दिन आया, तब यह प्रश्न उठा कि सबसे पहले किन महानुभावकी पूजा की जाय? उस यज्ञमण्डपमें सबसे वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध महात्मा भीष्म ही थे। धर्मराज युधिष्ठिरने उन्हींसे यह निर्णय कराना उचित समझकर पूछा—'पितामह! अब यज्ञमें आये हुए राजाओंको अर्घ्य देनेका समय आ गया है, इन उपस्थित महानुभावोंमेंसे पहले किसकी पूजा की जाय?'

भीष्मने कहा—'युधिष्ठिर! यहाँ जितने महापुरुष उपस्थित हैं, उनमें तेज, बल, पराक्रम, ज्ञान, विज्ञान आदि बातोंमें भगवान् श्रीकृष्ण ही सबसे श्रेष्ठ हैं। जैसे सूर्यके प्रकाशित होनेपर नक्षत्रोंका तेज न केवल नगण्य बल्कि अदृश्य हो जाता है, वैसे ही श्रीकृष्णके सम्मुख दूसरे लोगोंकी स्थिति है। तमोमय स्थानको सूर्यकी भाँति और निस्तब्ध स्थानको वायुकी भाँति भगवान् श्रीकृष्ण ही हमारी सभाको भर रहे हैं। उन्हींके प्रकाशसे सब प्रकाशित और उन्हींके आनन्दसे सब आनन्दित हैं। इसलिये सबसे पहले श्रीकृष्णकी ही पूजा होनी चाहिये।' भरी सभामें इस प्रकार श्रीकृष्णकी महिमा गाकर भीष्म-पितामहने सहदेवको आज्ञा दी कि प्रधान अर्घ्य लाकर भगवान्

श्रीकृष्णको दो । सहदेवने तत्क्षण आज्ञाका पालन किया । श्रीकृष्ण-ने शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार अपने भक्त पाण्डवोंके द्वारा अर्पित अर्घ्यको बड़ी प्रसन्नतासे ग्रहण किया ।

उस यज्ञमण्डपमें चेदिदेशका राजा शिशुपाल भी उपस्थित था, उससे भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा सहन नहीं हुई । वह क्रोधके मारे तमतमा उठा, उसकी आँखें लाल-लाल हो गयीं । वह खड़ा होकर भीष्म तथा युधिष्ठिरका तिरस्कार करके श्रीकृष्णको भला-बुरा कहने लगा । शिशुपालने कहा—'युधिष्ठिर ! यहाँ बड़े-बड़े धार्मिक, विद्वान् और सदाचारी नरपति उपस्थित हैं, उनके सामने किसी प्रकार कृष्ण पूजा पाने योग्य नहीं । तुमने लोगोंसे सम्मति लिये बिना ही पूजा की है, यह सर्वथा अयोग्य है, तुम्हें धर्मके सूक्ष्म रहस्यका पता नहीं है । इस विषयमें तुम बच्चे हो । बूढ़े भीष्मने भी धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन करके अपनी अज्ञता ही प्रकट की है । तुम्हें सब लोग धर्मज्ञ और धर्मात्मा समझते थे, परंतु कृष्णको प्रसन्न करनेके लिये तुमने अनुचित आचरण किया है । सब लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे । कृष्ण राजा नहीं हैं, सबसे वयोवृद्ध भी नहीं हैं; क्योंकि उनके पिता वसुदेव भी इस यज्ञमण्डपमें उपस्थित हैं । यदि तुम उन्हें अपना हितैषी और अनुगत समझते हो तो द्रुपद क्या उनसे कम हैं ? आचार्योंमें द्रोणाचार्य, ऋत्विजोंमें व्यास और मृत्युको अपनी इच्छाके अधीन रखनेवाले भीष्म जब यहीं उपस्थित हैं, तब श्रीकृष्णकी पूजा कैसे हो सकती है ? क्या हम-लोगोंको अपमानित करनेके लिये ही निमन्त्रित किया था ? हमने भय, लोभ अथवा मोहसे तुम्हें अपना सम्राट् नहीं बनाया है ।

अपने ही रूप हैं। ये सबके अन्तर्यामी और सर्वव्यापी होनेपर भी सबसे परे हैं। पाँचों भूत, मन, बुद्धि और अहंकार, चारों प्रकारके प्राणी श्रीकृष्णमें ही स्थित हैं। केवल इस ब्रह्माण्डमें ही नहीं, सब ब्रह्माण्डोंमें एक श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम हैं। उनके एक-एक रोमकूपमें असंख्य-असंख्य ब्रह्माण्ड समुद्रकी तरंगमें सीकर-कणोंकी भाँति उत्पन्न होते और विलीन होते रहते हैं। शिशुपाल अभी बालक है, श्रीकृष्णके तत्त्व और महत्त्वको नहीं जानता। जाने ही कैसे, उसने कभी इसके लिये चेष्टा नहीं की है। मैं जानना चाहता हूँ कि सभामें शिशुपालके अतिरिक्त और कौन ऐसा है जो श्रीकृष्णकी पूजा नहीं चाहता? मैं स्पष्ट शब्दोंमें कहता हूँ कि हमने श्रीकृष्णकी पूजा की है। यदि कोई इसे अनुचित, समझता है तो समझा करे; जो करना चाहता है, सो कर ले।'

भीष्मकी बात समाप्त होनेपर सहदेवने कहा—'हमने श्रीकृष्ण-की पूजा की है और सर्वथा उचित की है। जिन्हें वह असह्य हुई हो, उनके सिरपर मैं पैर रखता हूँ। यदि उनमें शक्ति हो तो वे आगे आकर मुझसे निपट लें।' सहदेवकी बातका किसीने प्रतिवाद नहीं किया। आकाशसे पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी। देवता लोग साधु-साधु कहकर सहदेवको धन्यवाद देने लगे। त्रिकालदर्शी देवर्षि नारदने उठकर सबके आगे स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'जो मनुष्य होकर भी कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना नहीं करते, वे जीवित होनेपर भी मृतकके समान हैं। उनसे बात भी नहीं करनी चाहिये।'

यज्ञका कार्य आगे चला, दूसरे राजाओंकी पूजा होने लगी। शिशुपाल वहाँसे अलग जाकर राजाओंसे सलाह करने लगा

कि अभी लड़ाई छेड़कर इनके यज्ञमें विघ्न डाल दिया जाय। कुछ राजा लोग उससे मिल भी गये। थोड़ी देरतक कोलाहल-सा मच गया।

उस समय युधिष्ठिरने भीष्मपितामहके पास जाकर पूछा—'पितामह! बहुत-से राजा शिशुपालके भड़कानेसे क्रुद्ध होकर युद्ध करनेपर उतारू हो गये हैं। इस समय मुझे क्या करना चाहिये? आप विचार करके कुछ ऐसा उपाय बतावें, जिससे यज्ञमें विघ्न न हो और सारी प्रजाका हित हो।' भीष्मपितामहने कहा—'युधिष्ठिर! चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है, तुम्हारा मार्ग निष्कण्टक है। इस विषयमें क्या करना होगा, सो मैंने पहलेसे ही निश्चय कर रक्खा है। जैसे सिंहको सोते देखकर कुत्ते भों-भों करते हैं और उसको उठा हुआ देखकर भग जाते हैं, वैसे ही जबतक श्रीकृष्ण चुपचाप हैं, तभीतक ये लोग बहक रहे हैं। उनके खड़े हो जानेपर सब-के-सब चुप हो जायँगे। तुम निश्चय समझो, यदि शिशुपालके कहनेसे ये लोग यज्ञमें विघ्न करना चाहेंगे तो बहुत ही शीघ्र मारे जायँगे। जिस तेजके बलपर शिशुपाल तड़क रहा है, श्रीकृष्ण उसे हर लेना चाहते हैं। युधिष्ठिर! श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति और संहारके कारण स्वयं नारायण हैं, जो श्रीकृष्णका अनिष्ट करना चाहते हैं, उनकी बुद्धि बिगड़ गयी है।'

भीष्मपितामह यह बात सबके सामने ही कह रहे थे। शिशुपाल भी सुन रहा था। वह आपेसे बाहर हो गया। क्रोधित होकर श्रीकृष्णको, भीष्मको एवं पाण्डवोंको बहुत भला-बुरा कहने लगा। उसकी बात सुनकर भीमसेनको बड़ा क्रोध आया। उनके

स्वाभाविक ही लाल-लाल नेत्र और भी फैल गये। वे दाँतोंसे ओठ चवाने लगे, ललाटपर तीन रेखाएँ स्पष्ट दीखने लगीं। शरीर काँपने लगा, उनकी भयंकर मूर्ति देखकर बहुत-से लोग तो यों ही चुप हो गये। किसीने बोलनेकी हिम्मत की भी तो जबान ही बंद हो गयी। अब वह समय दूर नहीं था कि भीमसेन शिशुपालपर आक्रमण कर दें। भीष्मपितामहने बड़ी शान्तिके साथ अपने लम्बे-लम्बे हाथ फैलाकर उन्हें रोक लिया। उन्होंने मधुर और नीति-सङ्गत वचन कहकर भीमको शान्त किया। भीमसेन पितामहपर अत्यन्त श्रद्धा और गौरवबुद्धि रखनेके कारण उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सके। उस समय शिशुपालने हँसकर कहा—'भीष्म! तुम भीमसेनको रोकनेका कष्ट क्यों उठा रहे हो? तनिक छोड़ो तो सही, सब लोग देखें कि भीमसेन मेरे पास आते-ही-आते किस प्रकार जलकर भस्म हो जाता है।'

भीष्मने शिशुपालकी बात अनसुनी करके भीमसेनसे कहा—'भीमसेन! शिशुपालके जन्मके समय ही यह बात निश्चित हो चुकी है कि इसकी मृत्यु किसके हाथसे होगी? जब इसका जन्म हुआ था, तब पृथ्वीपर गिरते ही यह गधेकी भाँति चिल्लाने और रोने लगा। इसके चार हाथ थे और तीन आँखें थीं। माता-पिता और परिवारके सब लोग चिन्तित हो गये कि क्या किया जाय? उसी समय आकाशवाणी हुई कि 'भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है। इस बालकसे तुम्हारा कुछ अनिष्ट नहीं होगा। यह बड़ा बली और श्रीमान् होगा। अभी इसकी मृत्यु नहीं होगी, परंतु इसको मारनेवाला पैदा हो चुका है।' आकाशवाणीसे प्रभावित होकर

माताने स्नेहवश पुत्रको अपनी गोदमें उठा लिया और मृत्युकी बातसे घबराकर आकाशवाणीको लक्ष्य करके कहा—'जिसने मेरे पुत्रके बारेमें ये वचन कहे हैं, उसको प्रणाम करके मैं इतना और जानना चाहती हूँ कि इसकी मृत्यु किसके हाथसे होगी ?' आकाशवाणीने उत्तर दिया कि 'जिसकी गोदमें जाते ही इस बालकके दो हाथ और एक आँख गायब हो जायगी, वही इसे मारेगा ।' यह बात चारों ओर फैल गयी । अनेकों देशके राजा-रईस इस अद्भुत बालकको देखनेके लिये आने लगे । शिशुपालके पिता सबका यथायोग्य सत्कार करते और बालकको गोदमें दे देते । इस प्रकार हजारों व्यक्तियोंकी गोदमें यह दिया गया; परंतु इसकी तीसरी आँख और दो हाथ गायब नहीं हुए ।

'एक दिन अपनी बुआके इस लड़केका समाचार सुनकर श्रीकृष्ण भी आये । यथायोग्य सत्कार होनेके पश्चात् उन्होंने भी शिशुपालको गोदमें लिया । श्रीकृष्णके शरीरसे स्पर्श होते ही उसकी तीसरी आँख गायब हो गयी और दोनों हाथ टूटकर गिर पड़े । इसपर दुखी होकर शिशुपालकी माताने अपने भतीजे श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण ! भयभीतोंको आश्रय देनेवाले एकमात्र तुम्हीं हो । तुम्हीं अभय और शान्ति देते हो । मैं तुमसे एक वरदान माँगती हूँ, वह मुझे दो ।' श्रीकृष्णने कहा—'देवी ! डरो मत, मुझसे आपको कोई भय नहीं है । मैं आपको क्या वर दूँ । आप जो कहिये वही करूँ, चाहे वह हो सकता हो या नहीं ।' शिशुपालकी माताने कहा—'श्रीकृष्ण ! यह शिशुपाल यदि तुम्हारा कभी अपराध भी करे, तो क्षमा कर देना ।' श्रीकृष्णने कहा—'यदि तुम्हारा

पुत्र मारनेयोग्य सौ अपराध भी करेगा तो मैं क्षमा कर दूँगा, कुछ कहूँगा नहीं। तुम शोक न करो।'

कथा समाप्त करते हुए भीष्मने कहा—'भीमसेन! देखो, श्रीकृष्णके इसी वरदानसे मत्त होकर शिशुपाल बेधड़क युद्धके लिये ललकार रहा है। सच्ची बात तो यह है कि इसका ललकारना भी श्रीकृष्णकी प्रेरणासे ही हो रहा है। शिशुपालने इस भरी सभामें जैसी बातें कहीं, वैसी बात कोई भी सभ्य पुरुष नहीं कह सकता। घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं। श्रीकृष्ण अब अपनी शक्ति वापस लेना चाहते हैं। शिशुपाल भीष्मके मुखसे ऐसी मर्मकी बात सुनकर आगबबूला हो गया। वह क्रोधान्ध होकर खुल्लमखुल्ला गाली देने लगा। अन्तमें भीष्मने कहा कि 'अब बात करनेसे कोई लाभ नहीं, जिसमें दम हो, हिम्मत हो वह युद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णको बुलावे, अभी निपटारा हो जाय।' भीष्मकी बात सुनकर शिशुपालने श्रीकृष्ण-को ललकारकर कहा कि 'आओ हमलोग दो-दो हाथ देख लें। आज, पाण्डवोंके साथ तुम्हें मारकर मैं अपनी चिरकालीन अभिलाषा पूर्ण करूँ।' वह नाना प्रकारके कटु वचन कहने लगा।

शिशुपालके कटु वचन समाप्त हो जानेके पश्चात् बड़ी गम्भीरता और धैर्यके साथ श्रीकृष्ण अत्यन्त कोमल स्वरसे बोले—'नरपतियो! आपलोग शिशुपालको जानते हैं, हमारे साथ इसका जैसा सम्बन्ध है वह किसीसे छिपा नहीं है। हमने अबतक इसकी कोई बुराई नहीं की है, फिर भी यह दुराचारी सर्वदा हमारे अनिष्ट-में ही लगा रहता है। यह हमसे अकारण शत्रुता रखता है। जब हमारे प्राग्ज्योतिषपुर जानेका समाचार इसको मिला, तब इसने चुपकेसे जाकर द्वारकामें आग लगा दी। राजा भोज रैवतक पहाड़-

पर विहार कर रहे थे, तब इसने अकारण ही उनके अनुचरोंको मारा। मेरे पिताके अश्वमेधयज्ञमें इसने घोड़ा चुरा लिया। तपस्वी बभ्रुकी स्त्री जब सौवीर देशको जा रही थी, तब इस नीचने मार्गमें आक्रमण करके उसके साथ बलात्कार किया। करूषराजकी पोशाक पहनकर इसने उनकी भावी पत्नीको धोखा देकर उड़ा लिया। अपनी बुआकी बात मान लेनेके कारण ही मैंने इसके अपराधोंको क्षमा किया और अबतक मारा नहीं। मैंने इसका आचरण आपलोगोंके सामने स्पष्ट रूपसे रख दिया है। मैं अबतक इसके सौ अपराध क्षमा कर चुका हूँ। अब यह नीच किसी प्रकार जीता नहीं बच सकता। आज मेरा यह क्रोध किसी प्रकार व्यर्थ नहीं जा सकता।' भरी सभामें इस प्रकार भण्डाफोड़ होनेपर भी शिशुपाल लज्जित नहीं हुआ। वह उल्टे हँसकर श्रीकृष्णकी ही मखौल उड़ाने लगा।

श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्रका स्मरण किया। सब लोगोंके सामने ही वह श्रीकृष्णके हाथमें आ गया। भगवान्‌ने ज्यों ही उसे आज्ञा की, त्यों ही वह चमकता हुआ चला और शिशुपालके सिरको धड़से अलग करके जमीनमें गिरा दिया। राजाओंके देखते-देखते शिशुपालके शरीरसे बिजलीके समान एक ज्योति निकली और वह श्रीकृष्णके पैरोंके पास चक्कर लगाकर उन्हींमें समा गयी। यह देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। सब लोगोंने भीष्मकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। उनके ज्ञान-विज्ञानकी चारों ओर प्रशंसा होने लगी। सब लोग यही कहते कि जगत्‌में इस समय भीष्म-जैसा तत्त्वज्ञ और कोई नहीं है। युधिष्ठिरका यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। सब लोग अपने-अपने घर चले गये।

विराटनगरमें कौरवोंकी हार, भीष्मका उपदेश, श्रीकृष्णका दूत बनकर जाना, फिर भीष्मका उपदेश, युद्धकी तैयारी

दिन बीतते देर नहीं लगती । ऐसा माऌम होता है कि सुखके दिन तो इतने जल्दी बीतते हैं कि जान ही नहीं पड़ता कि कब बीत गये । इसी प्रकार दुःखके दिन भी बीत जाते हैं, परंतु ऐसा जान पड़ता है कि वे जल्दी नहीं बीत रहे हैं । जब दैवी सम्पत्तिवाले लोग सुखी होते हैं, तब आसुरी सम्पत्तिवालोंके मनमें स्वाभाविक ही द्वेष होता है । तनिक-सा निमित्त पा जानेपर वे उनके महान् शत्रु हो जाते हैं । दैवी सम्पत्तिवालोंके मनमें किसीके प्रति द्वेष नहीं होता, वे किसीका अनिष्ट नहीं करना चाहते । यही कारण है कि पहले बाधा-विघ्न पड़नेपर भी उनका सुख स्थायी होता है और आसुरी सम्पत्तिवाले कभी सुखी हो ही नहीं सकते । वे कभी-कभी सुखी-से माऌम पड़ते हैं; परंतु वास्तवमें उनके हृदयमें अशान्तिकी ज्वाला धधकती रहती है । दैवी सम्पत्तिवाले कालान्तरमें स्वर्गीय सुख अमृतकी भाँति पिया करते हैं और आसुरी सम्पत्तिवाले अपने नरकको अपरिमित कालतक भोगते रहते हैं । उनके लिये वह थोड़ा-सा समय भी बहुत लम्बा हो जाता है ।

पाण्डवोंका [illegible] निर्विघ्न समाप्त हुआ । उन्होंने [illegible] इस [illegible] और [illegible] साथ [illegible] । उनके मनमें [illegible] था । [illegible] कि दुर्योधन

आदिको भी उस यज्ञमें बड़ा ऊँचा और सम्मानका पद दिया गया, था; परंतु दुर्योधन आदिके मनमें यह सब देखकर प्रसन्नता नहीं हुई। उनके हृदयकी जलन और भी बढ़ गयी। वे गुटबंदी करके सोचने लगे कि किस प्रकार पाण्डवोंकी सम्पत्ति हड़प ली जाय। शकुनिकी सलाहसे जूआ खेलना निश्चय हुआ और धृतराष्ट्रसे बलात् अनुमति लेकर उन्होंने पाण्डवोंको बुलवाया। जूआ हुआ। शकुनिकी चालाकीसे पाण्डव न केवल अपनी धन-सम्पत्ति ही हार गये, बल्कि अपने-आपको और अपनी धर्मपत्नीतकको हार गये। उनके हार जानेपर भी कौरवोंको संतोष नहीं हुआ। उन्होंने रजस्वला द्रौपदीको भरी सभामें नग्न करनेकी चेष्टा की। भगवान्‌की कृपासे उसकी रक्षा हुई। उस समय वहाँका वायुमण्डल इतना दूषित हो गया था कि द्रौपदीके बार-बार पूछनेपर भी किसीने उसके प्रश्नोंका उत्तर नहीं दिया। कईने अपने मुँह फेर लिये और भीष्मने भी कुछ स्पष्ट उत्तर न देकर युधिष्ठिरपर ही टाल दिया।

प्रश्न यह होता है कि भीष्म-जैसे धर्मज्ञ और धर्मात्मा पुरुषने भी द्रौपदीके प्रश्नोंका उत्तर क्यों नहीं दिया? विचारनेपर मालूम होता है कि उन दिनोंकी परिस्थिति बड़ी विषम थी। पाण्डव दूर रहते थे। भीष्म कौरवोंके साथ ही रहते थे। दुर्योधन ही उनके भोजन आदिकी व्यवस्था करता था। उनके अशुद्ध अन्नके भोजनसे और अशुद्ध सहवाससे भीष्मपितामहकी बुद्धि भी कुछ प्रभावित हो गयी थी; जिससे विचारनेकी चेष्टा करनेपर भी भीष्म द्रौपदीके गूढ़ प्रश्नका निर्णय नहीं कर सके। इसके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती है। पता नहीं, यह कथा किसी पुराणमें आयी है या नहीं। गुरुजनोंसे

सुनी गयी है अवश्य । जब भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए थे और धर्मराज युधिष्ठिर उनसे अनेकों प्रकारके धर्म-कर्म, उपासना, ज्ञानके तत्त्व सुन रहे थे, तब एक बार एकाएक द्रौपदी हँस पड़ी । भीष्म-पितामहने द्रौपदीको हँसते हुए देखकर पूछा—'बेटी ! तुझे अकारण हँसी नहीं आ सकती, बताओ इस समय हँसनेका क्या कारण है ?' द्रौपदीने कुछ संकोचके साथ अपने मनकी बात कह दी । उसने कहा—'दादाजी ! जब मैं भरी सभामें नग्न की जा रही थी और आपसे पूछ रही थी कि इस सम्बन्धमें धर्मसङ्गत बात क्या है ? जूएमें अपनेको हारे हुए धर्मराज मुझे हारनेका अधिकार रखते हैं या नहीं ? तब तो आपने कह दिया कि मेरी बुद्धि इसका ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर रही है, युधिष्ठिर जो कहें वही ठीक है; परंतु आज आप धर्मराजको धर्मतत्त्वका उपदेश कर रहे हैं, यही देखकर मुझे हँसी आ गयी ।'

भीष्मपितामहने कहा—'बेटी ! उस समय कौरवोंके सङ्ग और उनके दूषित अन्नके कारण मेरी बुद्धि दूषित एवं धर्माधर्मके निर्णयमें असमर्थ हो गयी थी । अब बाणोंके लगनेसे मेरा दूषित रक्त निकल गया है और बुद्धि पवित्र हो गयी है । इस समय मुझे धर्मके रहस्य स्पष्ट दीख रहे हैं ।'

चाहे भीष्मपितामहकी बुद्धि दूषित हुई हो या न हुई हो, इस किंवदन्तीसे इतनी शिक्षा तो मिलती ही है कि दूषित वायुमण्डल और दूषित मनोवृत्तिवाले लोगोंका प्रभाव बड़े ऊँचे पुरुषोंपर भी पड़ सकता है । भीष्मने चाहे जान-बूझ करके ही वैसा अभिनय किया हो और अपने ऊपर कुछ लाञ्छन स्वीकार करके भी हमलोगोंको इस दोषसे मुक्त रहनेको

प्रेरित किया हो; क्योंकि महापुरुषोंकी प्रत्येक चेष्टा लोगोंके कल्याणके लिये ही हुआ करती है।

इतना सब होनेपर भी भीष्मपितामहका हृदय पाण्डवोंके ही पक्षमें था। इस बातका प्रमाण महाभारतमें स्थान-स्थानपर मिलता है। पहली बारके जूएमें तो धृतराष्ट्रने द्रौपदीको पुनः सारी सम्पत्ति दे दी, पाण्डवोंको मुक्त कर दिया; परंतु दूसरी बारके जूएमें पाण्डवों-के लिये बारह वर्षका वनवास और एक वर्षका अज्ञातवास तै रहा। उन्होंने वनमें जाकर बड़ी तपस्या की, अर्जुनने पाशुपतास्त्र प्राप्त किया। तेरहवें वर्षका अज्ञातवास रूप बदलकर उन्होंने विराट-नगरमें बिताया। एक प्रकारसे अज्ञातवासका एक वर्ष बीत जानेपर कौरवोंको बड़ी चिन्ता हुई कि आजकल पाण्डव कहाँ हैं? उन्हें किस प्रकार नष्ट किया जाय? गुप्तचरोंने आकर जवाब दे दिया कि उनका पता कहीं नहीं चला, अब वे जीवित नहीं हैं—ऐसा जान पड़ता है। दुर्योधनने दुःशासन, कर्ण और द्रोणाचार्यकी सलाह ली। उन लोगोंने कहा कि पता लगाना चाहिये। भीष्मने द्रोणाचार्य-के कथनकी पुष्टि की और कहा कि 'पाण्डव श्रीकृष्णके अनुगामी हैं, सदाचारका पालन करते हैं। उनके नाशकी तो सम्भावना ही नहीं है। उनका पता लगानेका उपाय मैं बताता हूँ। दूसरे लोगोंने युधिष्ठिरके अज्ञात होकर रहनेका जो कारण बताया है वह मुझे ठीक नहीं जँचता। पाण्डवलोग जिस नगर या देशमें होंगे वहाँके राजाका अमङ्गल नहीं हो सकता। वहाँके लोग दानी, मधुर बोलने-वाले, मर्यादाकी रक्षा करनेवाले, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और अपने धर्मपर अनुराग रखनेवाले होंगे। वहाँ वेदकी ध्वनि सुनायी पड़ती

होगी, अनेकों यज्ञ होते होंगे। ठीक समयपर वर्षा होती होगी, पृथ्वी अन्नसे हरी-भरी और भयरहित होगी। अन्नमें बड़ा स्वाद होगा, फल स्वास्थ्यकर होंगे। शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा चलती होगी। कोई किसीका विरोध नहीं करता होगा। गौएँ बलिष्ठ होंगी। वहाँके द्विज अपने धर्मके पालनमें लगे होंगे। वहाँकी प्रजामें पारस्परिक प्रेम होगा। कोई असमयमें मरता नहीं होगा। लोगोंकी अतिथि-सत्कारमें रुचि होगी। वहाँकी प्रजा उत्साहपूर्ण होगी। युधिष्ठिरमें सत्य, धैर्य, दाननिष्ठा, शान्ति, क्षमा, लोकलज्जा, शोभा, कीर्ति, महानुभावता, दया, सरलता आदि सद्गुण सर्वदा वर्तमान हैं। वे जहाँ रहते हैं, वहीं इन गुणोंका विस्तार हो जाता है। वे विद्वान् एवं महात्मा हैं, वे कहीं वेश बदलकर रहते होंगे। मैं इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता। यदि उन्हें ढूँढ़ना ही है, तो ऐसे लक्षणयुक्त स्थानमें ही तलाश करो।' भीष्मके इन वचनोंसे स्पष्ट हो जाता है कि उनकी युधिष्ठिर आदिके सम्बन्धमें कैसी धारणा है। वे दुर्योधनके पास रहते हुए भी हृदयसे युधिष्ठिरपर ही आस्था रखते हैं और समय-समयपर युधिष्ठिरकी ही प्रशंसा किया करते हैं।

सुशर्माकी सलाहसे कौरवोंने मत्स्यदेशके राजा विराटपर चढ़ाई कर दी। उन दिनों पाण्डव वेष बदलकर वहीं रहते थे। महाराज विराट सुशर्मासे युद्ध करनेके लिये एक दिशामें गये हुए थे, दूसरी दिशासे कौरवोंने आक्रमण किया। अवसर देखकर अर्जुन प्रकट हो गये, यह बात कौरवोंसे भी छिपी नहीं रही। लोगोंमें यह चर्चा होने लगी कि अज्ञातवासका वर्ष पूरा होनेके पहले ही अर्जुन प्रकट हो गये हैं; इसलिये इन्हें फिर बारह वर्षका वनवास भोगना पड़ेगा।

द्रोणाचार्यके पूछनेपर भीष्मपितामहने कहा—'आचार्य ! कालचक्रके बहुत-से छोटे-बड़े अंश होते हैं, जैसे काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ग्रह, नक्षत्र, ऋतु और वर्ष । समयकी घटती-बढ़ती और नक्षत्रमण्डलकी गतिके उलट-फेरसे हर पाँचवें वर्ष दो महीने बढ़ते हैं । उन मलमासोंको जोड़कर आज तेरह वर्ष पूरे होकर पाँच महीना छ: दिन अधिक हो गये हैं । पाण्डवोंकी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी है, इसीसे अर्जुन तुम्हारे सामने प्रकट हुए हैं । पाँचों पाण्डव विशेष करके युधिष्ठिर धर्म और अर्थका तत्त्व जानते हैं । उन लोगोंसे धार्मिक अपराधकी तो सम्भावना ही नहीं है । वे निर्लोभ हैं । उन्होंने कठोर साधना की है । वे अधर्म करके राज्य पाना नहीं चाहते । धर्मके बन्धनमें बँधे रहनेके कारण ही अबतक उन्होंने अपना पराक्रम नहीं दिखाया है । वे हँसते-हँसते मृत्युके मुँहमें जाना स्वीकार कर सकते हैं; परंतु असत्यके मार्गमें जाना स्वीकार नहीं कर सकते । वे अपना हक लेकर छोड़ेंगे । इन्द्र भी उनका हिस्सा नहीं दबा सकते । अब हमें उनके साथ युद्ध करना होगा ।

उस दिन अर्जुनके सामने कोई ठहर नहीं सका । कौरव हारकर हस्तिनापुर लौट गये । भीष्मपितामहको कौरवोंके हारनेकी तनिक भी चिन्ता नहीं हुई । वे पाण्डवोंके सकुशल मिल जानेसे बहुत ही प्रसन्न थे । वे हृदयसे चाह रहे थे कि बिना युद्धके पाण्डवोंका राज्य उन्हें मिल जाय और कौरव-पाण्डव दोनों ही सुखी हों । परंतु वे भगवान्‌की इच्छाकी प्रतीक्षा कर रहे थे । वे जानते थे और विश्वास रखते थे कि भगवान् जो करेंगे, अच्छा ही करेंगे । इसी विश्वासपर निश्चिन्त रहकर वे भगवान्‌के भजनमें लगे रहते थे ।

पाण्डव प्रकट हुए। विराटकी पुत्री उत्तराके साथ अभिमन्युका विवाह हुआ। विवाहके अवसरपर देश-देशके मित्र राजा उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण-बलराम भी आये। पाण्डवोंको उनका राज्य प्राप्त हो जाय, इसके लिये लोगोंका विचार-विनिमय हुआ। यह तय रहा कि पहले नम्रतासे ही उनसे कहा जाय। यदि इतनेपर भी वे पाण्डवोंका हक नहीं दे देते तो युद्ध किया जाय। धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके पास संजयको भेजा और बिना कुछ दिये सन्धि हो जाय इसकी चेष्टा की। संजय वहाँसे लौटकर आये, उन्होंने पाण्डवोंके उत्साहका वर्णन किया और बतलाया कि उनसे युद्ध न करना ही अच्छा है। इस विषयपर कौरवोंकी सभामें विचार होने लगा। सबसे पहले भीष्मपितामहने बड़े स्पष्ट शब्दोंमें यह बात कही—'दुर्योधन! पाण्डवोंको जीतना तुम्हारे वशकी बात नहीं है। जिस पक्षमें श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, उसको कोई परास्त नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण और अर्जुन साक्षात् नर-नारायण हैं। यह बात केवल मैं ही नहीं कह रहा हूँ, सभी देवता और ऋषि इस बातको जानते हैं।

'एक समय ब्रह्माकी सभा लगी हुई थी। उसमें बृहस्पति, शुक्राचार्य, सप्तर्षि, इन्द्र, अग्नि, वायु, वसु आदि देवता, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व सब यथास्थान बैठे हुए थे। उसी समय नर-नारायण भी उधरसे निकले। उनके तेजस्वी मुखमण्डल और प्रभावशाली शरीरको देखकर सब लोग विस्मित—चकित हो गये। वे दोनों ब्रह्माकी सभामें ठहरे भी नहीं, आगे चले गये। बृहस्पतिने ब्रह्मासे पूछा—'भगवन्! ये कौन हैं जो आपकी उपासना किये बिना आगे बढ़े जा रहे हैं?' ब्रह्माने कहा—'ये अपने प्रभावसे तीनों

लोकोंको प्रकाशित करनेवाले नर-नारायण हैं। इनके द्वारा सारे संसारमें आनन्द और शान्तिका विस्तार हो रहा है। ये असुरोंको मारनेके लिये एक भगवान्‌के ही दो लीलाविग्रह हैं।' इसलिये दुर्योधन! श्रीकृष्ण और अर्जुनको जीतनेका विचार ठीक नहीं है।'

भीष्मपितामहने आगे कहा—'उन दिनों दैत्य और देवताओं-का युद्ध चल रहा था। देवतालोग भयभीत थे, वे नर-नारायणके पास गये। उन्होंने उनकी स्तुति की और वर माँगा। नर-नारायणने कहा—'इन्द्र! तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो। तब उन्होंने युद्धमें सहायता माँगी। नर-नारायणकी सहायतासे इन्द्र विजयी हुए और दैत्य हार गये। नर-नारायणने अनेकों बार दैत्योंको परास्त किया है। वही नर अर्जुन हैं और वही नारायण श्रीकृष्ण हैं। मैं यह बात अपनी ओरसे नहीं कह रहा हूँ। वेदज्ञ नारद मुनिने मुझसे यह बात कही है। उन्हें संसारका कोई वीर हरा नहीं सकता। दुर्योधन! अभी तुम मेरी बात नहीं सुन रहे हो, परंतु जब तुम शंख, चक्र गदा, पद्मधारी भगवान् श्रीकृष्णको और गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुनको एक रथपर बैठे देखोगे, तब तुम्हें मेरे वचनोंका स्मरण होगा। मेरी बात नहीं मानोगे तो निस्संदेह कुरुवंशियोंका सर्वनाश हो जायगा। मैंने तुमसे बड़े रहस्यकी बात कही है, इतनेपर भी यदि तुम मेरा कहा न सुनोगे और परशुरामके शापसे कलंकित हीनजाति सूत-पुत्र कर्ण और पापबुद्धि शकुनि एवं दुःशासनको ही सत्रह मानोगे तो यही समझना चाहिये कि तुम्हारी बुद्धि धर्म और अर्थ दोनोंसे ही भ्रष्ट हो गयी है।'

भीष्मपितामहकी बात सुनकर कर्ण तमक उठा । उस
कहा—'पितामह ! अब ऐसी बात कभी मत कहियेगा । मैं
क्षत्रियधर्म स्वीकार किया है । दुर्योधनको क्षत्रियधर्म पालन करने
सलाह देता हूँ । इसमें निन्दा करने योग्य कोई दोष या दुराच
नहीं है । मैं दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये युद्धमें अर्जुन
मारूँगा । अब उनसे मेल नहीं हो सकता । चाहे जैसे होग
मैं दुर्योधनको प्रसन्न करूँगा ।'

भीष्मपितामहने कर्णकी बात सुनकर धृतराष्ट्रसे कहा—
'धृतराष्ट्र ! कर्ण अपने मुँहसे कई बार अपनी बड़ाई करता है कि
मैं पाण्डवोंको मारूँगा, परंतु मैं दोनोंका बलाबल जानता हूँ
यह पाण्डवोंके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं है । इसके कार
तुम्हारे दुष्ट पुत्रोंपर बड़ी भारी विपत्ति आनेवाली है । दुर्योधन इसीके
बलपर फूला-फूला फिरता है । इसीके कारण उसने देवतास्वरू
पाण्डवोंका तिरस्कार किया है । कर्णने अबतक किया ही क्या है
अर्जुनने इसके सामने ही इसके भाई विकर्णको मार डाला, तब
कर्णका पौरुष कहाँ गया था ? जब दुर्योधन आदि सौ कौरवोंको
विवश करके अकेले अर्जुनने उनके कपड़े छीन लिये, तब क्या कर्ण
सोया हुआ था ? गन्धर्व जब कौरवोंको पकड़कर ले गये थे, तब
कर्णने उनका क्या कर लिया था ? पाण्डवोंने ही उस समय
कौरवोंकी रक्षा की थी । यह कर्ण अपने मुँहसे अपनी बड़ाई करता
है और धर्म एवं अर्थ दोनोंको नाश करनेवाली सलाह दिया करता
है । इसकी बात न मानकर पाण्डवोंसे सन्धि करो और उनका

हिस्सा उन्हें दे दो।' द्रोणाचार्यने पितामहकी बातका समर्थन किया। धृतराष्ट्रके मनमें उस समय न जाने क्या बात थी। उन्होंने पितामहके वचनोंपर ध्यान नहीं दिया, वे संजयसे बात करने लगे।

श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे सन्धिका संदेश लेकर हस्तिनापुर आये। दुर्योधनने भीतर-ही-भीतर यह षड्यन्त्र रचा कि श्रीकृष्णको कैद कर लिया जाय। जब यह बात भीष्मको मालूम हुई, तब उन्होंने बड़े कड़े शब्दोंमें धृतराष्ट्रसे कहा—'धृतराष्ट्र! तुम्हारा पुत्र बड़ा नासमझ है। यह ऐसी ही बात सोचता है जिससे कुलका अनर्थ हो। इष्ट-मित्रोंके समझानेपर भी यह ठीक रास्तेपर नहीं चलता। तुम भी अपने शुभचिन्तकोंकी बातपर ध्यान न देकर इस कुमार्गगामी पापी पुत्रकी बात मानते हो और उसीके अनुसार चलते हो। यदि दुर्योधनने श्रीकृष्णका कुछ अनिष्ट किया तो यह उनके क्रोधकी आगमें भस्म हो जायगा। यह धर्मसे च्युत हो गया है। इसकी ऐसी अनर्थकारी बात मैं नहीं सुनना चाहता।' इतना कहकर भीष्मपितामह वहाँसे उठकर चले गये।

जब भगवान् श्रीकृष्णने सबके सामने सभामें सन्धिका प्रस्ताव रक्खा और समझाया कि युद्धमें हानि-ही-हानि है, धर्मके मार्गपर चलो और धर्मराजका हिस्सा दे दो। उस समय भीष्मने दुर्योधनको सम्बोधन करके कहा—'बेटा! भाइयोंके कल्याणकी इच्छासे श्रीकृष्णने जो आज्ञा दी है, वह मान लो। क्रोधके वशमें होना बहुत ही बुरा है। यदि तुम श्रीकृष्णकी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा भला नहीं होगा। उनकी आज्ञाका पालन करनेमें ही सच्चा सुख

और कल्याण है। श्रीकृष्णके वचन धर्म-अर्थके अनुकूल और सच्चे अभीष्टको सिद्ध करनेवाले हैं। प्रजाका नाश मत करो, सन्धिका प्रस्ताव मान लो। बेटा ! अभिमानसे बावले होकर अपने मित्रोंका जीवन संकटमें मत डालो, अपने पिताके जीते-जी भरतकुलकी साम्राज्य-लक्ष्मीको नष्ट मत करो। मैं तुम्हें बार-बार सलाह देता हूँ कि धर्मसे विचलित मत होओ।'

भीष्मके बाद द्रोणाचार्य, विदुर और धृतराष्ट्रने बहुत कुछ समझाया, परंतु दुर्योधनने किसीकी बात नहीं सुनी। उसकी चाल-ढाल देखकर भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यको बड़ी व्यथा हुई। वे एक साथ ही दुर्योधनसे कहने लगे—'दुर्योधन ! अब भी सँभल जाओ, अभी श्रीकृष्ण और अर्जुनने युद्धकी घोषणा नहीं की है। अभी गाण्डीवपर डोरी नहीं चढ़ी है। धौम्यने शत्रुओंके नाशके लिये हवन नहीं किया है। अभी शान्त आत्मा युधिष्ठिरने क्रोधभरी दृष्टिसे तुम्हें नहीं देखा है। भयंकर कालके समान भीमसेन गदा भाँजते हुए तुम्हारी सेनाको अभी चौपट नहीं कर रहे हैं। अभी सँभल जाओ। यह हत्याकाण्ड इसी समय रोक दो, तुम सिर झुकाकर युधिष्ठिरको प्रणाम करो, वे तुम्हें अपने गलेसे लगा लेंगे। वे अपना दाहिना हाथ तुम्हारे कंधेपर रक्खें और पीठपर फेरें। तुम पाँचों पाण्डवोंसे प्रेमसे मिलो, सब लोग आनन्दके आँसू बहावें। शान्तिकी घोषणा की जाय और बिना खूनखराबीके सब लोग सुखपूर्वक रहने लगें।'

दुर्योधनने किसीकी बात नहीं मानी, उलटे सभासे उठकर

चला गया और श्रीकृष्णको कैद करनेकी चेष्टा करने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने अपना प्रभाव दिखाकर वहाँसे यात्रा की और उनके चले जानेके बाद भीष्म और द्रोण पुनः दुर्योधनको समझाने लगे। उन्होंने कहा—'दुर्योधन! कुन्तीने श्रीकृष्णके द्वारा पाण्डवोंको जो संदेश भिजवाया है वह तुम्हें भी मालूम है। श्रीकृष्ण उससे सहमत हैं और पाण्डव अपनी माताकी आज्ञाका पालन अवश्य करेंगे। वे पहले धर्म-बन्धनमें बँधे हुए थे। इसीसे अबतक क्लेश सहते रहे। अब उनके शान्त होनेकी कोई आशा नहीं है। तुमलोगोंने भरी सभामें द्रौपदीका जो अपमान किया है, वह उन लोगोंको कभी भूल नहीं सकता। धर्मके भयसे ही उस समय उसका प्रतिवाद नहीं किया गया। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वनवास और अज्ञातवास किया है। अब धर्मका बन्धन नहीं है। वे अस्त्र-विद्यामें प्रवीण हैं। उनके पास अमोघ शस्त्रास्त्र विद्यमान हैं। भीम और अर्जुन-जैसे वीर हैं, श्रीकृष्ण-जैसे सहायक हैं। वे कदापि चुप नहीं बैठ सकते। तुम तो जानते ही हो कि विराट-नगरीमें अकेले अर्जुनने हम सबको हरा दिया। गन्धर्वके हाथसे अर्जुनने ही तुम्हें छुड़ाया। यह अर्जुनके पराक्रमका नमूना मात्र है। उनसे मेल करनेमें ही कुरुकुलकी रक्षा है। सब सहायकोंको लौटा दो। शस्त्रहीन होकर उनसे मिलो। हम दोनों वृद्ध जो कुछ कह रहे हैं, तुम्हारे हितके लिये ही कह रहे हैं। हमारी बात मानो और बुद्धिमानीका काम करो।'

दुर्योधनने किसीकी बात नहीं मानी, युद्ध करना ही निश्चित रहा। दोनों ही ओरसे बहुत कुछ तैयारी तो पहले ही हो चुकी

थी । रही सही तैयारी भी पूरी हो गयी । अब केवल युद्धका डंका बजने भरकी देर थी ।

इस अवसरपर भीष्मके सामने बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई । जिस दिनसे उन्होंने राज्य-त्यागका संकल्प किया था, उस दिनसे उनके मनमें फिर यह बात कभी नहीं आयी कि यह राज्य मेरा है या इससे मेरा कुछ सम्बन्ध है । जब सहायताकी आवश्यकता पड़ी, कर दी; परामर्शकी आवश्यकता पड़ी, दे दी; नहीं तो चुपचाप एकान्तमें रहकर भजन करते रहे । वे अपने मनमें ऐसा समझते थे कि दुर्योधनने मेरे रहनेके लिये स्थान दिया है, वह मेरे भोजन-वस्त्रका प्रबन्ध करता है; इसलिये यह शरीर उसीके अन्नसे पुष्ट, उसीका है । जैसे एक योद्धा राजाश्रयसे रहकर जीवन-निर्वाह करता है, वैसे ही मैं भी दुर्योधनके आश्रयमें रहकर दुर्योधनके अन्नसे पला हूँ । मुझे चाहिये कि एक साधारण योद्धाकी भाँति लड़कर दुर्योधनके लिये अपने प्राण दे दूँ । दूसरी ओर मनमें यह बात आती कि युधिष्ठिर धर्मके पक्षपर हैं, वे स्वयं धर्म हैं । मुझे उन्हींकी ओर रहना चाहिये । इन दोनों बातोंसे वे कुछ चिन्तित हुए, परंतु अन्तमें यही निश्चय हुआ कि भगवान्‌की जैसी इच्छा होगी, होगा, पहलेसे इसके उधेड़बुनमें पड़नेकी क्या आवश्यकता है । वे निश्चिन्त होकर भगवान्‌का चिन्तन करने लगे ।

महाभारत-युद्धके नियम, भीष्मकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये भगवान्‌ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी

भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन है अधर्म-राज्यका नाश और र्मराज्यकी स्थापना । जब पृथ्वीपर अत्याचार और अत्याचारियोंकी ढ़ती होती है, तब उनका नाश करके धर्म और धार्मिकोंकी ढ़तीके लिये भगवान्‌का अवतार हुआ करता है । भगवान्‌के साथ ी, बहुत-से देवता और बहुत-से महापुरुष भी अवतार ग्रहण किया रते हैं । उनके अवतारका यही उद्देश्य होता है कि वे भगवान्‌की ीलामें सहायता पहुँचावें । युधिष्ठिर, अर्जुन आदि ऐसे ही अवतार ैं । यदि भगवान् चाहते तो उनके संकल्प मात्रसे युधिष्ठिरको राज्य मिल सकता था, अत्याचारियोंका नाश हो सकता था; परंतु भगवान्‌को ऐसा करना अभीष्ट नहीं था । वे दैवी सम्पत्तिवालों और आसुरी सम्पत्तिवालोंमें युद्ध कराकर यह स्पष्ट दिखा देना चाहते थे कि मैं दैवी सम्पत्तिवालोंकी सहायता करता हूँ । एक प्रयोजन और था, उन दिनों क्षत्रियोंके रूपमें बहुतसे दैत्योंने जन्म ग्रहण किया था, वे छुक-छिपकर और कभी-कभी प्रकट होकर धर्मके विरुद्ध आचरण करते थे । उन दोनों प्रकारके दैत्योंका नाश कराना था । उनके लिये स्वयं शस्त्र उठानेकी कोई आवश्यकता न समझकर भगवान्‌ने उन्हें पाण्डव या कौरवोंके पक्षमें बुला लिया । दोनों ही पक्षोंमें दैत्योंकी पर्याप्त संख्या थी, एक पक्षमें घटोत्कच आदि थे, तो दूसरे पक्षमें अलंबुष आदि उससे भी बढ़कर थे । अब भगवान्‌के साथ अवतार लेनेवाले ऐसे देवता और महापुरुषोंको भी आवश्यकता

थी कि जो स्वयं तो धर्मके विरोधी पक्षमें रहें, परंतु जो धर्म
आड़में रहकर अपनेको धर्मके पक्षमें बताकर धर्मराजकी ओ
लड़नेवाले दैत्य हैं उनका भी वध करें ।

यह काम धर्मराजके पक्षमें रहकर लड़नेवाले धार्मिकों
अपेक्षा भगवान्‌के बड़े प्रिय भक्तोंका होना चाहिये । जो भगवान
साथ रहकर दैत्योंका वध करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कुछ कह
ही नहीं है; परंतु जो बाहरसे भगवान्‌के विरोधी पक्षमें रहक
और तो क्या स्वयं भगवान्‌पर भी बाण चलाकर भगवान्
इच्छा पूर्ण करते हैं, उनके अवतारके कार्यमें सहायता पहुँचाते
वे बहुत बड़े महान् पुरुष हैं और वे स्वयं चाहे न जानें, पर
भगवान्‌का बहुत बड़ा काम कर रहे हैं, इसमें संदेह नहीं । इ
दृष्टिसे विचार करनेपर ऐसा जान पड़ता है कि पाण्डवोंके पक्ष
रहकर सात्यकि आदि धर्मकी स्थापनाके लिये जैसा कार्य कर
हैं, वैसा ही कार्य दुर्योधनके पक्षमें रहकर भीष्म, द्रोण और क
भी कर रहे हैं । ये सब-के-सब देवताओंके अवतार हैं । भगवान्
लीलाके सहायक हैं । भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये बाहर-बाहर
अधर्मके पक्षका कार्य करते हुए भी पृथ्वीका भार हरण करने
भगवान्‌के वैसे ही सहायक हो रहे हैं, जैसे युधिष्ठिर, अर्जुन अ
भीम; बल्कि एक दृष्टिसे तो भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये अनुचि
पक्ष स्वीकार करके इन्होंने अपनी भक्तिकी पराकाष्ठा दिखा दी
अथवा इनके न जाननेपर भी भगवान्‌ने इन्हें अपनी लीलाका ऐस
पात्र चुनकर इनपर अपनी निरतिशय ममता प्रकट की, ऐसा स्प

चाहे लोग जो समझें, भीष्मने भगवान्‌की इच्छासे, भगवान्‌की
भगवान्‌के कार्यमें सहायता करनेके लिये दुर्योधनका पक्ष
ौर उसके पहले सेनापति बनकर उन्होंने प्रतिदिन पाण्डव-
दस हजार वीरोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की ।
जब दोनों ओरकी तैयारी पूरी हो चुकी, तब दुर्योधनने
तामहके पास जाकर बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर कहा—
ह ! मेरी सेना लड़नेके लिये हर तरहसे तैयार है, परंतु
पयुक्त सेनापतिके बिना वह शिथिल पड़ रही है । सेना
ही अधिक और बलवान् क्यों न हो, योग्य सेनापतिके बिना
ई काम नहीं कर सकती । आप रणनीतिके विशेषज्ञ हैं,
हैं और मेरे हितचिन्तक हैं । आपको कोई मार नहीं
, क्योंकि आपकी मृत्यु आपकी इच्छाके अधीन है । आप ही
रक्षक और स्वयंसिद्ध सेनापति हैं । आपसे रक्षित होनेपर
वताओंका भय भी नहीं होगा । जैसे देवताओंकी सेनाके
ागे कार्तिकेय चलते हैं, वैसे ही आप हमारी सेनाके आगे-
चलिये । हम सब आपके पीछे-पीछे चलेंगे ।' दुर्योधनकी
सुनकर भीष्मपितामहने कहा—'दुर्योधन ! तुम्हारा कहना
, मेरी दृष्टिमें जैसे तुम हो, वैसे ही पाण्डव हैं । मैं अपनी
के अनुसार तुम्हारी ओरसे युद्ध करूँगा और पाण्डवोंको उनकी
ा उपदेश करूँगा । अर्जुन बड़े वीर हैं, अर्जुनको बहुतसे
अस्त्र-शस्त्र ज्ञात हैं और वे मुझसे युद्ध करनेकी योग्यता रखते
ापि वे मुझसे आमने-सामने युद्ध नहीं करेंगे । मैं पाण्डवोंपर
ाम रखता हूँ, मैं उनमेंसे किसीका वध नहीं करूँगा । यदि

दुर्योधनने विधिपूर्वक भीष्मपितामहका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया। ब्राह्मणोंको नाना प्रकारकी दक्षिणाएँ दीं। अनेकों प्रकारके बाजे बजने लगे, घोड़ोंके हिनहिनाने और हाथियोंकी चिग्घाड़से दिशाएँ गूँज उठीं। आकाशमें, अन्तरिक्षमें और पृथ्वीपर भी बहुतसे भयंकर उत्पात हुए। भीष्मपितामहको आगे करके सबने कुरुक्षेत्रकी यात्रा की। कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर सेनाका शिविर लग गया, वहाँ एक दूसरा ही हस्तिनापुर बस गया, अब बस, केवल युद्धकी प्रतीक्षा थी।

भीष्मपितामहने दुर्योधनको उनके पक्षके सब महारथी, अतिरथी, रथी, एकरथी आदिकी शक्ति बतायी। इसीके सिलसिलेमें उन्होंने कर्णको अर्धरथी कह दिया। पितामहने कहा—'दुर्योधन! तुम जिस कर्णकी बातोंमें भूलकर पाण्डवोंको जीतनेकी आशा रखते हो वह कर्ण बड़ा अभिमानी, नीच और झूठा है। उसके पास स्वाभाविक कवच-कुण्डल भी नहीं हैं, परशुरामसे झूठमूठ अपनेको ब्राह्मण बताकर धोखा देनेके कारण शाप भी पा चुका है, उसे मैं रथी या अतिरथी कुछ नहीं समझता, केवल अर्धरथी समझता हूँ।' द्रोणाचार्यने भीष्मपितामहकी बातोंका अनुमोदन किया। उन्होंने

कहा—'कर्णने अभी बैरतारक काम ही क्या किया है? बातें तो बड़ी-बड़ी करता है, परंतु रेन मौकेपर भग जाता है।' दोनोंकी बातें सुनकर कर्ण झुँझला उठा। वह बहुत कुछ बकने जा रहा था, परंतु दुर्योधनने बात टाल दी, वह भीष्मपितामहसे पाण्डव-पक्षके वीरोंकी शक्ति पूछने लगा। भीष्मपितामहने विस्तारसे पाण्डव-पक्षकी शक्तिका वर्णन किया और अन्तमें कहा कि 'इन सब वीरोंसे मैं अकेला ही युद्ध करूँगा और इन्हें रोकूँगा। उनके पक्षमें केवल द्रुपदकुमार शिखण्डी ही ऐसा है, जिससे मैं युद्ध नहीं कर सकता। शिखण्डी पूर्वजन्ममें काशिराजकी कन्या अम्बा था। मुझे मारनेके लिये अम्बाने तपस्या की और अब वह द्रुपदके यहाँ शिखण्डिनीके रूपमें पैदा हुई है। एक यक्षकी कृपासे शिखण्डिनी इस समय शिखण्डी हो गयी है, परंतु पहले स्त्री होनेके कारण शिखण्डीपर मैं शस्त्र प्रहार नहीं करूँगा।' दुर्योधनने उनकी बात स्वीकार की।

इसके बाद कौरव और पाण्डवोंने युद्धके नियम निश्चित किये। यह नियम बना कि सायंकाल युद्ध बंद हो जानेपर सब परस्पर मित्रताका व्यवहार करेंगे। समान शक्ति रखनेवाले ही एक दूसरेसे न्यायानुसार युद्ध करेंगे। युद्धमें कोई किसीको धोखा न देगा, अन्याय नहीं करेगा। वाणीका युद्ध करनेवालोंसे केवल वाणी-का युद्ध किया जायगा। जो भीगकर या किसी अन्य कारणसे सेनाके व्यूहसे बाहर निकल जायँगे उनपर कोई प्रहार नहीं करेगा। रथी रथीके साथ, हाथीका सवार हाथीके सवारके साथ, घुड़सवार घुड़सवारके साथ, पैदल सिपाही पैदल सिपाहीके साथ, योग्यता, इच्छा, उत्साह और बलके अनुसार युद्ध करेंगे। पहले सावधान

[illegible] पीछे प्रहार [illegible], [illegible]
और [illegible] कभी प्रहार नहीं किया जाएगा । जो पुरुष एक
[illegible] होगा, जिसका [illegible] होगा, जिसका शस्त्र
टूट गया होगा या [illegible] आपत्तिमें फँसा होगा, ऐसे
लोगोंपर कभी कोई प्रहार नहीं करेगा । सारथियों, भार ढोनेवाले
हाथी, घोड़े, बैल आदिपर, शस्त्र बनानेवाले शिल्पकारोंपर या शस्त्र
पहुँचानेवालोंपर, शंख, नगाड़ा आदि बजानेवालोंपर कभी कोई प्रहार
नहीं करेगा ।

ये भारतीय महायुद्धके नियम थे । आजका संसार, जो अपनी सभ्यताकी बहुत डींग हाँकता है, तनिक बुद्धि लगाकर आजकी सत्यानाशी सभ्यतासे उस प्राचीन सभ्यताकी तुलना करे । आजके भयंकर महायुद्धमें गैससे बचनेके लिये नाक और मुँहपर कवच लगानेवाले सैनिक सुरक्षित हैं, परंतु गाँवमें रहनेवाले अनाथ बच्चे, स्त्री और अपाहिज, जिनका युद्धसे कोई सम्बन्ध नहीं, बहुत बड़े खतरेमें हैं । क्या ऊँची सभ्यताका यही नमूना है ? एक वह समय था, एक वह सभ्यता थी जिसमें दिनभर अपने हकके लिये युद्ध करनेके पश्चात् शामको दोनों दलके वीर आपसमें गले लगते थे । गले लगनेकी तो बात ही क्या, माँगनेपर सर्वस्व देनेको तैयार रहते थे । पता नहीं यह कथा कहाँकी है, परंतु मैंने सुनी है और बड़ी ही अच्छी कथा है । जब दुर्योधन पाण्डवोंका अनिष्ट करनेके लिये काम्यक वनमें जा रहा था और चाहता था कि किसी प्रकार पाण्डवोंको नष्ट कर दूँ, उस समय अर्जुनके मित्र गन्धर्वराज चित्रसेनने कौरवोंको मार भगाया । दुर्योधनको वह पकड़ ले गया । जब यह बात

महाराज युधिष्ठिरको मालूम हुई, तब उन्होंने यह कहकर कि आपसमें विरोध होनेपर तो हम पाँच हैं और वे सौ हैं, परंतु दूसरोंके साथ विरोध हो तो हम सब मिलकर एकसौ पाँच हैं, अर्जुनको भेजा और अर्जुनके सीधे कहनेपर जब गन्धर्वोंने दुर्योधनको नहीं छोड़ा, तब अर्जुनने युद्ध करके दुर्योधनको छुड़ाया। उस समय अर्जुनके उपकारसे कृतज्ञ होकर दुर्योधनने कहा—'भाई! तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो। कहो तो सारा राज्य दे दूँ, कहो तो नया नगर बसा दूँ, और कहो तो अपने प्राण दे दूँ।' अर्जुनने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया, इसपर दुर्योधन उदास हो गया। दुर्योधनको दुखी देखकर अर्जुनने कहा—'अच्छा, अभी आप मेरी चीज सुरक्षित रखिये, जब आवश्यकता होगी माँग लूँगा।' दुर्योधन प्रसन्न हो गया।

भारतीय महायुद्धमें भीष्मने दुर्योधनके बहुत आग्रहपर एक दिन यह प्रतिज्ञा की थी कि 'इन पाँच बाणोंसे मैं पाँचों पाण्डवोंको मार डालूँगा।' जब यह समाचार पाण्डवोंके शिविरमें पहुँचा, तब धर्मराज युधिष्ठिर बहुत ही चिन्तित हुए। पाण्डवोंपर जब कोई विपत्ति आती, आपत्ति आती, तब उनके लिये एक ही सहारा था, वह था भगवान् श्रीकृष्णका सहारा। याद करते ही वे उपस्थित हो गये। भीष्मकी प्रतिज्ञाकी बात सुनकर वे मुसकराये, मानो उनके लिये यह एक मामूली-सी बात थी। उन्होंने अर्जुनको उस दिनकी बात याद दिलायी। अर्जुन तो उसे भूल ही गये थे। श्रीकृष्णने कहा कि 'चलो अर्जुन! हम दोनों चलें दुर्योधनके पास। अब उस दिनकी

जान गये हैं ?' दुर्योधनने कहा—'भाई ! जबतक इस शरीरमें प्राण हैं, तबतक मैं तुम्हारा यह उपकार नहीं भूल सकता । तुम क्या चाहते हो ? कहो तो अभी युद्ध बंद कर दूँ, [तुम्हें राज्यसिंहासनपर बैठा दूँ,] जो तुम कहो वही करूँ ।' अर्जुनने कहा—'भैया ! युद्ध तो अब हो ही रहा है, उसे अब बंद क्या करना है । राज्य भी हम अपने बल-पौरुषसे ही लेना चाहते हैं, किसीका दिया हुआ दान ले नहीं सकते । हां, हम एक विशेष प्रयोजनसे यहाँ आये हैं । आप एक घंटेके लिये अपना राजमुकुट दे दें, फिर मैं वापस दे जाऊँगा ।' दुर्योधनने तुरंत अपना राजमुकुट अर्जुनको दे दिया । अब भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको आगे किया और स्वयं पीछे हुए । दोनों ही भीष्मपितामहके शिविरमें आये । उस समय पितामह बैठे हुए भगवान्का ध्यान कर

रहे थे। अर्जुनने आकर प्रणाम किया। उन्होंने अधखुली आँखोंसे मुकुट देखकर सोचा कि प्रतिदिनकी भाँति दुर्योधन ही आया होगा, आशीर्वाद दिया और अर्जुनके माँगनेपर पाँचों बाण भी दे दिये। जब अर्जुन बाण लेकर बाहर निकल आये, तब श्रीकृष्ण भीष्मके सामने गये। श्रीकृष्णको देखकर भीष्म आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने पूछा—'भगवन्! इस समय आप कहाँ?' भगवान्‌ने कहा—'पितामह! जब तुमने पाण्डवोंको मारनेका प्रण कर लिया, तब मुझे नींद कैसे आ सकती है? अब तो तुम्हारे हाथसे बाण निकल गये, क्या कल पाण्डवोंको मारोगे?' भीष्मने कहा—'भगवन्! तुम जिनके रक्षक हो उन्हें भला कौन मार सकता है! मेरी प्रतिज्ञामें तो रक्खा ही क्या है? तुम्हारी जो इच्छा हो वही पूर्ण हो। तुम्हारी इच्छाके विपरीत मेरे मनमें कोई इच्छा ही न हो।' भगवान् हँसते हुए अर्जुनके साथ लौट आये, इस प्रकार पाण्डवोंकी रक्षा हुई।

यहाँ इस घटनाके उल्लेखका एकमात्र यही प्रयोजन है कि प्राचीन समयमें हमारे यहाँ कितनी पवित्र सभ्यता थी। एक उपकारके बदले दुर्योधन-जैसा बदनाम व्यक्ति भी अपना राजमुकुट दे सकता है और अपने प्राण देनेको तैयार रह सकता है। क्या आजकी सभ्यतामें ऐसा कोई माईका लाल है जो अपने शत्रुके साथ ऐसा बर्ताव करे। अथवा कोई ऐसा विश्वासी है जो इस प्रकार निःशस्त्र होकर रातमें अपने शत्रुके शिविरमें जाय और भाई-भाईकी तरह गले लगे। हाँ, तो कौरव-पाण्डवोंके युद्धके नियम बन गये और

यथाशक्ति उनका पालन भी हुआ। हम यह नहीं कहते कि उनका उल्लङ्घन नहीं हुआ, हुआ और अवश्य हुआ: परंतु उसकी निन्दा भी कम नहीं हुई, आखिर युद्ध युद्ध ही तो है।

दोनों ओरकी सेनाएँ व्यूह बनाकर खड़ी हो गयीं। अर्जुनके मनमें जो कुछ शोक-मोह आया, गीताका उपदेश करके भगवान्‌ने उसे हटा दिया। दोनों ओरसे बड़े-बड़े वीर सिंहनाद करने लगे, शंख बजाये जाने लगे। अब शस्त्र चलाने भरकी देर थी। इतनेमें ही लोगोंने बड़े आश्चर्यसे देखा कि धर्मराज युधिष्ठिर कवच उतारकर, शस्त्रका परित्याग कर, रथसे उतरकर कौरवोंकी सेनाकी ओर जा रहे हैं। उनको इस प्रकार जाते देखकर श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, सहदेव आदि भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे और राजाओंने भी उनका अनुसरण किया। अर्जुनने कहा—'महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं? हमलोगोंको छोड़कर पैदल ही शत्रु-सेनामें जानेका क्या उद्देश्य है?' भीमसेनने कहा—'आप शस्त्रास्त्रका परित्याग करके कवच उतारकर शत्रुओंकी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित सेनाकी ओर जा रहे हैं, आपका अभिप्राय क्या है?' नकुल और सहदेवने भी प्रश्न किये, किंतु उन्होंने किसीका उत्तर नहीं दिया, वे चलते ही गये। श्रीकृष्णने मुसकराकर लोगोंको समझाया कि 'मैं इनका भाव समझ रहा हूँ। ये भीष्म, द्रोण, कृप आदि बड़े-बूढ़ोंको नमस्कार करने और उनसे युद्ध करनेकी आज्ञा लेने जा रहे हैं। गुरुजनोंका सम्मान और आज्ञा पालन करनेसे ही मनुष्य विजयी होता है।' सबका समाधान हो गया।

युधिष्ठिरके बारेमें कौरवोंके सैनिक तरह-तरहकी बातें कर रहे
कोई कहता युधिष्ठिर डर गये हैं, कोई कहता उन्होंने कुलमें
: लगा दिया, कोई कहता वे शरणार्थी होकर आ रहे हैं।
ष्ठिरने किसीकी बातपर ध्यान नहीं दिया। वे सीधे भीष्मपितामह-
त गये, उनके चरणोंका स्पर्श किया और कहा कि 'पितामह!
ऐसा प्रसङ्ग आ पड़ा है कि विवश होकर हमें आपके साथ
: करनी पड़ेगी। आप हमें इसके लिये आज्ञा दीजिये और
र्वाद दीजिये।' भीष्मपितामहने कहा—'बेटा! तुम बड़े
हो। इस प्रकार मुझसे अनुमति माँगकर तुमने धर्मके अनुसार
किया है। यदि ऐसा न करते तो मैं तुम्हें पराजयका
दे देता। अब मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। युद्धमें तुम्हारी
य हो, तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो। जाओ, मैं तुम्हें युद्ध करने-
आज्ञा देता हूँ। युधिष्ठिर! तुम मुझसे और भी कुछ चाहते हो
माँग लो। किसी प्रकार तुम्हारी हार नहीं हो सकती। राजन्!
या कहूँ! अपनी सफाई किस तरह दूँ! यही समझो कि
य धनका दास है। धन किसीका दास नहीं है। मुझे धनसे
कौरवोंने अपने अधीन कर रक्खा है। इसीसे मैं नपुंसकोंकी भाँति
से कह रहा हूँ कि मेरा कुछ वश नहीं। कौरवोंका धन और
वे स्वीकार करके मैं उनके अधीन हो गया हूँ। युद्धमें सहायताके
तेरिक्त तुम मुझसे जो चाहो माँग लो, मैं सब कुछ दे सकता हूँ।'

युधिष्ठिरने कहा—'पितामह! यह आपकी महत्ता है, आप
स उद्देश्यसे क्या कहते हैं, यह हमलोग क्या जान सकते हैं?
प दुर्योधनकी ओरसे युद्ध करते हैं, तो करें। आपका शरीर

भी सिरोंके थे, जिनके हाथ कट गये थे । वह युद्धभूमिमें पड़ा कराह रहा था । महावीर भीष्म बाण-वर्षाद्वारा दसों दिशाओंको एकाकार करते हुए पाण्डव पक्षके वीरोंके नाम ले-लेकर उन्हें मारने लगे । उस समय अकेले भीष्म फुर्तीके कारण सैकड़ों, हजारों रूपमें दीख रहे थे । उनके बाणोंसे चोट खाकर पाण्डवोंकी सेना अचेत-सी हो गयी और हाहाकार करने लगी । पाण्डवोंके सैनिक भागने लगे ।

श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'देखो ! अब बड़ा भयंकर समय सामने आ गया है । इस समय यदि तुम भीष्मपर प्रहार न करोगे तो तुम्हारा किया कराया कुछ नहीं होगा । तुमने पहले प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझसे युद्धभूमिमें लड़ने आयगा चाहे वह भीष्म, द्रोण अथवा कृप ही क्यों न हों मैं उनको और उनके अनुचरोंको मारूँगा । अब समय आ गया है, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो ।' अर्जुनने कहा कि 'मेरा रथ उनके पास ले चलो ।' भगवान्‌ने रथ बढ़ाया । अर्जुनका रथ भीष्मकी ओर जाते देखकर सैनिकोंकी हिम्मत बढ़ी, वे भी लौटे, फिर घमासान युद्ध होने लगा । अर्जुनने शीघ्रतासे बाण चलाकर भीष्मपितामहके धनुषकी कई डोरी काट डाली । भीष्मने अर्जुनको शाबाशी दी और दृढ़तापूर्वक युद्ध करनेके लिये कहा ।

भीष्मने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको ही व्यथित किया, उनके शरीर क्षत-विक्षत हो गये । भीष्मके बाणोंसे सारी सेना पीड़ित हो गयी और भागने लगी । श्रीकृष्ण सोचने लगे कि भीष्मपितामह तो अपना पूरा पराक्रम दिखा रहे हैं और अर्जुन उनके साथ कोमल युद्ध कर रहा है । अर्जुनके मनमें उनके प्रति

रमात्र है न । इसीसे यह उनके प्रति कठोर बाणोंका उपयोग नहीं
ता । श्रीकृष्ण यों सोच रहे थे, दूसरी ओर भीष्मके बाणोंसे
र्जुनका रथ घिर गया । कौरवोंकी सेनाने भी उन्हें चारों ओरसे घेर
नेकी चेष्टा की । उसी समय अर्जुनकी सहायताके लिये सात्यकि
ये । उन्होंने देखा कि भीष्मकी बाणवर्षासे पाण्डवोंकी सेना
यभीत हो गयी है । पाण्डवोंकी सेनाको भागती हुई देखकर सात्यकि-
बड़ा जोश दिखाया और क्षत्रिय धर्मकी दुहाई देकर सबसे कहा
'युद्धसे भागना वीरोंका काम नहीं है ।' श्रीकृष्णने देखा कि भीष्म-
प्रचण्डता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और सात्यकिके समझानेपर
लोग लौट नहीं रहे हैं, अर्जुन कोमल युद्ध कर रहे हैं और भीष्म
वीरताकी सीमापर हैं । उन्होंने सात्यकिको सम्बोधन करके कहा—
रे सात्यकि ! जो भाग रहे हैं उन्हें भाग जाने दो । जो खड़े हैं वे
भाग जायँ, आज मैं अकेला ही भीष्म, द्रोण और उनके अनुचरों-
मारे डालता हूँ । तुम खड़े रहकर यह खिलवाड़ देखो । मैं अभी
यंकर चक्र हाथमें लेकर भीष्मको मार डालूँगा और पाण्डवोंका हित
रूँगा । मैं सब कौरवों और उनके पक्षपातियोंको मारकर युधिष्ठिरको
सिंहासनपर बैठाऊँगा ।'

इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंकी बागडोर छोड़ दी ।
वज्रके समान कठोर, तीखे और सूर्यके समान चमकते हुए
चक्रको लेकर वे रथसे कूद पड़े । जैसे सिंह हाथीको मारनेके लिये
पड़ता है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण भीष्मको मारनेके लिये कौरवों-
सेनाकी ओर दौड़े । उनके नीलोज्ज्वल शरीरपर सुनहला पीता
स्थिर बिजलीसे युक्त वर्षाकालीन मेघके समान शोभायमान हो

भीष्मके द्वारा श्रीकृष्णका माहात्म्यकथन, भीष्मकी प्रतिज्ञा-रक्षाके लिये पुनः भगवान्‌का प्रतिज्ञाभङ्ग, भीष्मका रणमें पतन

महापुरुषोंकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे ऊपर चाहे जिस काममें लगे हों, हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण कि करते हैं। चाहे भयंकर-से-भयंकर रूप धारण करके भगवान् उन सामने आवें, वे भगवान्‌को पहचान जाते हैं। एक क्षणके लिये उनके मानस-पटलसे मधुरमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णकी छबि नहीं हटती उनके अन्तस्तलमें एक भी ऐसी वृत्ति नहीं होती जो भगवान माहात्म्यज्ञानसे शून्य हो। भगवान्‌की स्मृति ही महात्माओंका जीव है, भगवान्‌की स्मृति ही महात्माओंका प्राण है और वास्तवमें हैं ही भगवत्स्मरण, स्मरणसे पृथक् उनकी सत्ता ही नहीं है।

भीष्मपितामहके जीवनमें भगवत्स्मरणकी प्रधानता है, वे अप इच्छासे कुछ नहीं करते, सब कुछ भगवान्‌की ही इच्छासे करते हैं जब भगवान् हाथमें चक्र लेकर उन्हें मारने आये, तब भी उन्हों भगवान्‌को वैसे ही पहचाना, जैसे सर्वदा पहचानते थे और आ भी हम उनके जीवनमें स्थान-स्थानपर देखेंगे कि वे भगवान्‌के स्मरण ही तल्लीन हैं।

चौथे दिनका युद्ध समाप्त हुआ। उस दिन दुर्योधनके बहुत-से भाई मारे गये। कौरवोंकी सेनामें मुर्दनी-सी छा गयी। पाण्डवोंकी सेनामें हर्षनाद होने लगा। दुर्योधनको बड़ी चिन्ता हुई। रातको भीष्मपितामहके पास गये। वे रोते हुए-से भीष्मपितामहसे कहने लगे—'पितामह! आप, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य आदि महावीर मेरे पक्षमें हैं और सच्चे हृदयसे मेरी ओरसे युद्ध कर रहे हैं। मैं ऐसा

समझता हूँ कि आप-जैसा योद्धा त्रिलोकीमें और कोई नहीं है। पाण्डवोंके सब वीर मिलकर भी अकेले आपको परास्त नहीं कर सकते। मुझे बड़ा संदेह हो रहा है कि पाण्डव किसके सहारे हमलोगोंको जीतने जा रहे हैं। आप कृपा करके बतलाइये उनकी जीतका क्या कारण है ?"

भीष्मपितामह बोले—"दुर्योधन ! मैं तुमसे यह बात कई बार कह चुका हूँ, परंतु तुमने उसपर ध्यान नहीं दिया। मैं अब भी तुम्हें यही सलाह देता हूँ कि तुम पाण्डवोंसे सन्धि कर लो, सन्धि करनेसे न केवल तुम्हारा ही बल्कि सारे संसारका भला होगा। जिनके साथ हिल-मिलकर तुम्हें राज्य-सुखका उपभोग करना चाहिये, उन्हींके साथ वैर-विरोध करके तुम अपने और उनके मिले-मिलाये सुख-भोगमें संदेह उत्पन्न कर रहे हो। चाहे उनकी हार हो या तुम्हारी, तुम्हारे ही भाई-बन्धु या तुम्हींलोग इस सुखसे वञ्चित रह जाओगे। बेटा दुर्योधन ! पाण्डव सब काम सहजमें ही कर सकते हैं, मुझे तो त्रिलोकीमें उन्हें मारनेवाला कोई नहीं दीखता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सर्वदा जिनकी रक्षामें तत्पर रहते हैं, उन पाण्डवोंको मारने-वाला प्राणी न पैदा हुआ है और न तो हो सकता है। यह बात मैं अपनी ओरसे नहीं कह रहा हूँ, बड़े-बड़े आत्मज्ञानी मुनियोंके मुँहसे जो पुराणगाथा मैंने सुनी है, वही मैं कह रहा हूँ। तुम मन लगाकर सुनो।

"एक समयकी बात है सब देवता और ऋषि-मुनि गन्धमादन पर्वतपर ब्रह्माजीके पास गये, उनके सामने ही अन्तरिक्षमें एक विमान प्रकट हुआ। ब्रह्माने जान लिया कि ये परमपुरुष परमेश्वर हैं। ब्रह्माने

भगवान्‌ने स्निग्ध-गम्भीर स्वरसे ब्रह्मासे कहा—'मैं तुम्हारे मनकी स्थिति जानकर ही प्रकट हुआ हूँ। मैं तुम्हारी प्रार्थना पूरी करूँगा।' इतना कहकर वे अदृश्य हो गये। अब देवता और ऋषियोंने ब्रह्मासे जिज्ञासा की कि 'ब्रह्मन्! हम यह जाननेके लिये उत्सुक हैं कि अभी-अभी जो आपके सामने अचिन्त्य शक्तियुक्त महापुरुष प्रकट हुए थे, वे कौन हैं?' ब्रह्माने बड़े मधुर स्वरसे कहा—'ये सब प्राणियोंके आत्मा परम प्रभु परम ब्रह्म हैं। ये तत्पदवाच्य और तत्पदके लक्ष्यार्थसे समन्वित सबसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तम हैं। ये तीनों कालोंमें एकरस और तीनों कालोंके आश्रय हैं, उन्होंने मुझपर परम अनुग्रह करके आज मुझसे वार्तालाप किया है। मैंने जगत्‌के लिये उनसे प्रार्थना की है कि तुम यदुवंशमें वसुदेवके घर अवतार ग्रहण करो। देवासुर-

संग्राममें मारे हुए दैत्य और राक्षस पृथ्वीपर मनुष्योंके रूपमें पैदा हुए हैं। उन्हें मारनेके लिये तुम्हारा पृथ्वीपर अवतार लेना बहुत ही आवश्यक है। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार की है, अब वे नर-नारायणके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे। उन्हें कोई जीत नहीं सकता, मूढ़लोग उन्हें नहीं जान सकेंगे। ऋषियो और देवताओ! तुम लोग उन्हें साधारण मनुष्य समझकर उनकी कभी अवज्ञा मत करना। वे सबके पूजनीय हैं, हम सब उनकी संतान हैं, हमें सर्वदा उनका सम्मान करना चाहिये। जो उन महापुरुष परमात्माको मनुष्य समझकर उनका अनादर करता है, वह महान् पापी है *।'

"भीष्म बोले—'दुर्योधन! इतनी बात कहकर ब्रह्मा अपने लोकमें चले गये। यह कथा मैंने परशुराम, मार्कण्डेय, व्यास और नारदसे भी सुनी है। वासुदेव श्रीकृष्ण लोकपितामह ब्रह्माके भी

* तस्मात् सेन्द्रैः सुरैः सर्वैर्लोकैश्चामितविक्रमः।
नावज्ञेयो वासुदेवो मानुषोऽयमिति प्रभुः॥
यश्च मानुषमात्रोऽयमिति ब्रूयात् स मन्दधीः।
हृषीकेशमवज्ञानात्तमाहुः पुरुषाधमम्॥
योगिनं तं महात्मानं प्रविष्टं मानुषीं तनुम्।
अवमन्येद्वासुदेवं तमाहुस्तामसं जनाः॥
देवं चराचरात्मानं श्रीवत्साङ्कं सुवर्चसम्।
पद्मनाभं न जानाति तमाहुस्तामसं बुधाः॥
किरीटकौस्तुभधरं मित्राणामभयङ्करम्।
अवजानन् महात्मानं घोरे तमसि मज्जति॥
एवं विदित्वा तत्त्वार्थं लोकानामीश्वरेश्वरः।
वासुदेवो नमस्कार्यः सर्वलोकैः सुरोत्तमाः॥

पिता हैं, यह जानकर भला कौन उनका सत्कार नहीं करेगा ? मैंने और बहुतसे ऋषियोंने अनेकों बार तुम्हें समझाया कि वासुदेव और पाण्डवोंसे वैर मत करो, परंतु मोहवश तुमने किसीकी बात नहीं सुनी, अब भी चेत जाओ तो अच्छा है। तुम नर-नारायणके अवतार अर्जुन और श्रीकृष्णसे द्रोह करते हो, यह तुम्हारा महान् दुर्भाग्य है। मैं तो तुम्हें क्रूर राक्षस समझता हूँ। मैं तुमसे फिर कहता हूँ कि श्रीकृष्ण ही प्रकृतिके एकमात्र स्वामी हैं, वे जिस पक्षमें हैं वही पक्ष विजयी होगा; क्योंकि जहाँ भगवान् हैं वहीं धर्म है, जहाँ धर्म है वहीं विजय है। इस समय स्वयं भगवान् ही पाण्डवोंके रक्षक हैं, श्रीकृष्ण सर्वदा उनकी सहायता करते हैं, सलाह देते हैं और भयका निमित्त उपस्थित होनेपर उनकी रक्षा करते हैं। श्रीकृष्णके आश्रयसे ही पाण्डव विजयी हो रहे हैं। मैंने तुम्हारे प्रश्नका संक्षेपसे उत्तर दे दिया, अब तुम और क्या जानना चाहते हो ?"

दुर्योधनने पूछा—'पितामह ! सब लोकोंके स्वामी एवं पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेवके आविर्भाव और स्थिति जाननेकी मेरे हृदयमें बड़ी अभिलाषा है।' भीष्मपितामहने कहा—'बेटा ! भगवान् श्रीकृष्ण देवताओंके भी देवता हैं। उनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है, उनके गुण भी असाधारण गुण हैं—अप्राकृत गुण हैं। मार्कण्डेय ऋषिने उनको सबसे महान् एवं आश्चर्यमय कहा है। वे सबके अविनाशी आत्मा हैं। सारी सृष्टिके परम कारण हैं, उन्होंने ही सारी सृष्टिको धारण कर रक्खा है। उन्होंने ही देश, काल, वस्तु और उनके नियमनकी सृष्टि की है। संकर्षण, नारायण, ब्रह्मा और शेषनाग भी उन्हींसे पैदा हुए हैं। उन्होंने ही वराह, नृसिंह, वामन

रूप धारण किये हैं। वही सबके सच्चे सुहृद्, माता-पिता और गुरु हैं। जो उनकी शरण ग्रहण करता है, जिसपर प्रसन्न होकर वे अपनाते हैं, उसका जीवन सफल हो जाता है। देवर्षि नारदने उन्हें लोकभावन और भावज्ञ कहा है। मार्कण्डेयने यज्ञोंका यज्ञ, तपका तप और भूत, भविष्य, वर्तमानरूप कहा है। भृगुने उनको देव-देव और विष्णुका पुरातन परमरूप कहा है। द्वैपायन व्यासने उन्हें इन्द्रको स्थापित करनेवाला कहा है। महर्षि असित-देवलने कहा है कि वासुदेवके शरीरसे अव्यक्त हुआ है और मनसे व्यक्त। सनकादिकोंका कहना है कि श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम हैं, वही सब ऋषि, महर्षि और धर्मोंकी गति हैं। बेटा! मैंने तुमसे स्पष्ट रूपसे वासुदेव श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन किया है, इससे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो और तुम उनकी सेवा करो। मैंने तुम्हें यह भी बतला दिया कि अर्जुन और श्रीकृष्ण क्यों नहीं जीते जा सकते! श्रीकृष्ण उनपर अत्यन्त प्रसन्न और अनुरक्त हैं, इसलिये तुम उनको जीतनेकी आशा छोड़कर सन्धि कर लो और सुखसे अपना जीवन बिताओ। नर और नारायणसे द्रोह करनेका यह परिणाम अवश्यम्भावी है कि तुम्हारा विनाश हो जाय।'

दुर्योधनने भीष्मपितामहकी सारी बात सुनी और उनकी बातोंको यथार्थ माना भी। उसने निश्चय किया कि श्रीकृष्ण और पाण्डव हमसे बहुत श्रेष्ठ हैं, फिर भी वह भीष्मकी सलाहके अनुसार सेवा नहीं कर सका। वह उनके पाससे उठकर उन्हें प्रणाम करके अपने शिविरमें चला गया, प्रातःकाल पुनः युद्ध शुरू हुआ। इसी प्रकार आठवें दिनका युद्ध भी समाप्त हुआ, उस दिन

भी पाण्डवोंकी ही जीत रही। कौरव बड़े चिन्तित हुए। शकुनि, दुश्शासन, दुर्योधन, कर्णने मिलकर सलाह की कि यदि भीष्म पितामह युद्धसे हट जायँ और कर्णके ऊपर यह सब भार डाल दिया जाय तो कर्ण शीघ्र-से-शीघ्र पाण्डवोंको जीत सकता है। कर्णने स्वयं ही कहा कि 'भीष्म शस्त्र त्याग कर दें तो मैं अकेला ही पाण्डवोंको मार डालूँ।' दुर्योधन यह प्रस्ताव लेकर भीष्मपितामह-के पास गया।

दुर्योधनने भीष्मपितामहसे कहा—'शत्रुनाशन! हम आपके भरोसे पाण्डवोंकी तो बात ही क्या सम्पूर्ण देवताओं और दानवोंको परास्त करनेकी आशा करते हैं, आप पाण्डवोंको परास्त कीजिये। यदि आप हमारे दुर्भाग्यसे उनपर विशेष कृपा रखते हैं और हमसे द्वेष रखते हैं तो युद्धप्रिय कर्णको युद्ध करनेकी आज्ञा दे दीजिये, वह पाण्डवों और उनकी सम्पूर्ण सेनाको परास्त करनेको तैयार बैठा है। आपकी क्या आज्ञा है?' दुर्योधनकी बात सुनकर भीष्म-पितामह लम्बी साँस लेने लगे। उनके मर्मस्थलमें गहरा घाव करनेकी चेष्टा दुर्योधनने की। फिर भी उन्होंने कोई रूखी बात नहीं कही। उन्होंने कहा—'दुर्योधन! मैं बड़ी ईमानदारीके साथ अपने प्राणोंकी परवा न करके युद्ध कर रहा हूँ फिर तुम ऐसी बात क्यों कहते हो? अर्जुनने खाण्डवदाहके समय साक्षात् इन्द्रको जीत लिया था। जब गन्धर्वोंने तुम्हें पकड़ लिया और तुम्हारे भाई तथा कर्ण तुम्हें छोड़कर भग गये, तब अर्जुनने अकेले ही उन गन्धर्वोंको जीत लिया। विराटनगरमें हम सब अर्जुनका कुछ नहीं कर सके, उलटे वे सब महारथियोंके कपड़े उतार ले गये थे,

यह उनके पराक्रमका यथेष्ट प्रमाण है। उस समय कर्णका पराक्रम कहाँ गया था, जब अर्जुन उसके वस्त्र छीन ले गये और उत्तराको उपहार दिया। नारदादि ऋषि-महर्षि जिन्हें परमात्मा मानते हैं, वे देवाधिदेव श्रीकृष्ण अर्जुनके सहायक हैं। मैं भला अर्जुनको कैसे परास्त कर सकता हूँ? मैं शिखण्डीपर शस्त्र नहीं चला सकता, पाण्डवोंको मारना अपनी शक्तिसे बाहर जाननेपर भी मैं अपनी ओरसे कोई कोर-कसर नहीं करूँगा। जाकर तुम आराम करो, मैं कल महाघोर युद्ध करूँगा। जबतक यह पृथ्वी रहेगी तबतक मेरे उस युद्धकी चर्चा रहेगी।'

पता नहीं यह कथा किसी पुराणमें है या नहीं, परंतु महात्माओंके मुँहसे सुनी गयी है, सम्भव है किसी पुराणमें हो। वह यह है कि दुर्योधनके बड़े आग्रहसे और उसके बार-बार बाध्य करनेपर कि 'यदि आप मेरी ओरसे सचाईके साथ लड़ते हैं तो पाण्डवोंको मारनेके सम्बन्धमें कोई-न-कोई प्रतिज्ञा कीजिये' भीष्म-पितामहने अपने तरकशमेंसे पाँच बाण निकाले और प्रतिज्ञा की कि भगवान्‌की इच्छा हुई तो इन्हीं पाँच बाणोंसे पाँचों पाण्डवोंको मार डालूँगा। कौरवोंकी सेनामें चारों ओर खुशीके नगाड़े बजने लगे, सब लोगोंने सोचा अब तो पाण्डव मर ही गये। क्या भीष्मपितामह-की प्रतिज्ञा भी झूठी हो सकती है? सब ओर लोग युद्ध-समाप्तिकी आशासे आनन्द मनाने लगे।

यह समाचार गुप्तचरोंद्वारा पाण्डवोंकी छावनीमें भी पहुँचा। पाँचों पाण्डव इकट्ठे हुए, वे चिन्ता करने लगे कि अब क्या हो? किस प्रकार भीष्मपितामहकी भीषण प्रतिज्ञासे हमलोग बचें?

सभी चिन्तामें पड़े हुए थे, अर्जुनके मनमें श्रीकृष्णका भरोसा था, परंतु वे भी कह नहीं सकते थे। द्रौपदी भी वहीं बैठी हुई थी। उसे श्रीकृष्णके सम्बन्धमें कई अनुभव थे। जभी द्रौपदीने पुकारा, तभी उसकी पुकार सुनी गयी थी। उस दिन भरी सभामें दुश्शासनने उसे नंगी करनेकी चेष्टा की थी, उसकी पुकार सुनकर श्रीकृष्ण दौड़े आये और उन्होंने वस्त्र बढ़ाकर उसकी रक्षा की। दुर्वासाके भयसे जब सारे पाण्डव किंकर्तव्यविमूढ़से हो गये थे, तब द्रौपदीने भगवान् श्रीकृष्णको पुकारा और वे उसी समय नंगे पाँव दौड़े आये तथा उसके बर्तनमेंका सागका एक पत्ता खाकर दुर्वासाकी महान् विपत्तिसे पाण्डवोंकी रक्षा की। श्रीकृष्णकी इस अनन्त कृपाका स्मरण हो जानेके कारण द्रौपदी गद्‌गद हो गयी और एक प्रकारसे निश्चिन्त होकर उसने कहा—'चिन्ता किस बातकी है? हमारे रक्षक श्रीकृष्ण हैं, उनसे ही यह बात क्यों न कही जाय।' श्रीकृष्णकी सहायताका स्मरण होनेपर पाण्डवोंकी सारी चिन्ता मिट गयी, वे कृतज्ञभावसे उनका स्मरण करने लगे।

उसी समय भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराते हुए प्रवेश किया। उन्होंने कहा—'आज घोड़ोंकी देखभाल करनेमें विशेष विलम्ब हो गया, कहिये आपलोग चुपचाप क्यों बैठे हैं? कोई गंभीर समस्या तो सामने नहीं आ गयी है?' युधिष्ठिरने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! आपसे क्या छिपा है? क्या आप नहीं जानते कि भीष्मपितामहने हम पाँचों भाइयोंको मारनेके लिये पाँच बाण निकाल रक्खे हैं? हम लोग इसी चिन्तामें थे कि अब हमारी रक्षा कैसे होगी? हमारा जीवन आपके हाथमें है, आपकी इच्छा हो सो कीजिये। बचाइये, न बचाइये, हम कुछ नहीं जानते।'

भगवान् हँसने लगे। उन्होंने कहा—'आजका बचाना न बचाना हमारे हाथमें नहीं है। आज द्रौपदी चाहे तो तुमलोग बच सकते हो।' द्रौपदी बोल उठी—'प्रभो! आप क्या कहते हैं! क्या मैं अपने प्राणप्रिय स्वामियोंको बचानेकी चेष्टा न करूँगी? यदि मेरे बलिदानसे भी इन लोगोंकी रक्षा होती हो तो आप शीघ्र बतावें।' भगवान्ने कहा—'बलिदान करनेकी कोई बात नहीं है, तुम्हें मेरे साथ भीष्मपितामहके पास चलना पड़ेगा।' द्रौपदी तैयार हो गयी, आगे-आगे द्रौपदी और पीछे-पीछे भगवान् श्रीकृष्ण चलने लगे। इस प्रकार उन्होंने पाण्डवोंकी सेनाके अंदरका मार्ग समाप्त किया।

कौरवोंकी सेनामें प्रवेश करनेके पहले ही भगवान्ने कहा कि 'द्रौपदी! तुम्हारा और सब शरीर तो चादरसे ढका है, परंतु तुम्हारी जूतियाँ साफ दीख रही हैं। उनके पंजाबी होनेके कारण सब लोग समझ जायँगे कि पंजाबकी बनी हुई जूतियोंको पहनकर द्रौपदी ही जा रही है। तब मुझपर भी लोगोंका संदेह हो जायगा, इसलिये तुम अपनी जूतियाँ मुझे दे दो, इससे तुम्हें लोग नहीं पहचान सकेंगे और मुझे भी जूती लिये देखकर सामान्य सेवक ही समझेंगे।' द्रौपदीने कुछ संकोचके साथ, परंतु प्रेममें मुग्ध होकर अपनी जूतियाँ भगवान्को दे दीं। भगवान्की भक्तवत्सलताका स्मरण करके आनन्दविभोर द्रौपदी आगे-आगे चल रही थी और अपने पीताम्बरमें द्रौपदीकी जूती लपेटकर उसे काँखमें दबाये हुए पीछे-पीछे श्रीकृष्ण चल रहे थे। क्या है जगत्में कोई इतना दीनवत्सल स्वामी?

भीष्म उस समय अपनी शय्यापर बैठे हुए भगवान्का चिन्तन कर रहे थे, वे सोच रहे थे—मेरा जीवन भी कितना गया-बीता है।

स्यंदन खंडि महारथ खंडौं, कपिध्वज सहित डुलाऊँ ।
इती न करौं सपथ मोहि हरि की, छत्रिय-गतिहि न पाऊँ॥
पांडव दल सनमुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर वहाऊँ ।
सूरदास रनभूमि विजय विन, जियत न पीठ दिखाऊँ ॥

नवें दिन प्रातःकाल नित्य-कृत्यसे निवृत्त होकर सभी योद्धा रणभूमिमें आये । उस दिन पहलेके दिनोंसे भी भयंकर संग्राम हुआ । कौन-कौन-से वीर किन-किनसे लड़े और किन्होंने किनका वध किया और किसने किसको कितने बाण मारे यह सब जानना हो तो महाभारतका भीष्मपर्व ही पढ़ना चाहिये । उस समय पाण्डवोंकी सेनामें भीष्म दावानलकी भाँति प्रज्वलित हो रहे थे । बहुत-से रथ अग्निके कुण्ड थे, धनुष उनकी ज्वाला थी, तलवार, गदा, शक्ति आदि ईंधन थे, बाण चिनगारी थे । भयंकर नर-संहार हो रहा था ।

आज भगवान् श्रीकृष्ण बहुत चिन्तित-से थे । उन्होंने देखा, अर्जुन भीष्मपितामहके गौरव और उनकी कृतज्ञतासे दब-सा गया है । वह बार-बार कहनेपर भी भीष्मपर कठोर शस्त्रोंका आघात नहीं कर रहा है और भीष्म दुर्योधनसे प्रतिज्ञा कर लेनेके कारण घोर पराक्रम प्रकट कर रहे थे । भगवान्‌को भी अपनी भक्तवत्सलता और भीष्मकी महिमा प्रकट करनी ही थी । उन्होंने एक बार, दो बार अर्जुनको समझाया, परंतु अर्जुनकी ओरसे कोई विशेष चेष्टा नहीं हुई । भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनका रथ हाँककर भीष्मके सामने ले गये । भीष्म और अर्जुनका युद्ध होने लगा, भीष्मके बहुतसे शस्त्रास्त्र तो रथकी गति और घोड़ोंको चलानेकी चतुरतासे भगवान् श्रीकृष्णने व्यर्थ कर दिये; परंतु फिर भी भीष्मके शस्त्रोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही घायल

ए बिना नहीं रहे। तीसरे दिनके युद्धमें जब भगवान्‌ने चक्र धारण किया था, तब तो अर्जुनकी ही दुर्बलता उसमें प्रधान कारण थी, परंतु आज तो भीष्मकी भीषणता और उनके महत्त्वको प्रकट करना ही प्रधान कारण था। उन्होंने अर्जुनके रथके घोड़ोंकी रास छोड़ दी। वे रथसे कूद पड़े और बारंबार सिंहनाद करके हाथमें कोड़ा लिये हुए भीष्मको मारने दौड़े। श्रीकृष्णकी आँखें लाल-लाल हो रही थीं, उनका शरीर खूनसे लथपथ हो रहा था। वेगसे चलनेके कारण उनका पीताम्बर पीछेकी ओर उड़ रहा था। उनके पदाघातसे पृथ्वी फट-सी रही थी। भगवान् श्रीकृष्णको इस प्रकार भीष्मकी ओर झपटते देखकर कौरवपक्षके सैनिक भयसे विह्वल हो गये और उनके मुँहसे 'भीष्म मरे, भीष्म मरे' ये शब्द निकलने लगे। सिंहनाद करते हुए श्रीकृष्ण जिस समय भीष्मकी ओर बड़े वेगसे जा रहे थे, उस समय ऐसा मालूम हो रहा था कि कोई बड़ा बलशाली सिंह मत्त हाथीपर आक्रमण करनेके लिये जा रहा है। उनके मरकत मणिकेसे साँवले शरीरपर वर्षाकालीन बादलमें स्थिर बिजलीकी भाँति पीताम्बर फहरा रहा था।

श्रीकृष्णको भीष्मकी ओर बढ़ते देखकर सब लोग तो भयभीत हो गये, परंतु भीष्म तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने धनुषकी डोरी खींचते हुए कहा—'श्रीकृष्ण! मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, आइये! आइये! इस वीरवेशमें आपका स्वागत है। इस महायुद्धमें आपके द्वारा ही मुझे वीरगति प्राप्त हो, यह वाञ्छनीय है। मेरे लिये आपके हाथों मरना परम कल्याण है। तीनों लोकोंमें मुझे सम्मानित करानेके लिये ही आपने अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर मेरी

प्रतिज्ञा रक्खी है । भक्तवत्सल ! मैं आपका सेवक हूँ । आप मुझपर चाहे जैसा प्रहार करें ।'*

श्रीकृष्णके पीछे ही अर्जुन भी रथसे कूद पड़े थे । भीष्मके पास पहुँचते-पहुँचते उन्होंने श्रीकृष्णको पकड़ लिया । कुछ दूरतक घसीट ले जानेके बाद वे रुक गये । अर्जुन स्नेहपूर्ण नम्रस्वरमें श्रीकृष्णसे कहने लगे—'श्रीकृष्ण ! आप पहले युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं । उसे अन्यथा मत कीजिये, यदि आप शस्त्र लेकर पितामहसे लड़ेंगे, तो सब लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे, इसकी जिम्मेवारी मुझपर है । मैं शस्त्र, सत्य और सुकृतकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं युद्धमें भीष्मको मारूँगा ।' श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ रथपर लौट गये और फिर दोनों ओरसे बाणवर्षा होने लगी । नवें दिनके युद्धमें पाण्डवोंकी सेना क्षतविक्षत हो गयी । सभी वीर थक गये । सूर्यास्त होनेके कुछ पूर्व संध्या, विश्राम आदि करनेके लिये युद्ध बंद होनेकी घोषणा कर दी गयी ।

रातमें श्रीकृष्ण और पाण्डव इकट्ठे हुए, युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा—'भगवन् ! भीष्म हमारी सेनाको नष्ट कर रहे हैं । शस्त्रवर्षा करते समय उन्हें साक्षात् इन्द्र और यमराज भी नहीं हरा सकते, हमलोगोंकी तो बात ही क्या है । हमसे तो युद्धके समय

---

* एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते ॥
मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे ।
त्वया हि देव संग्रामे हतस्यापि ममानघ ॥
श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः ।
सम्भावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाद्य संयुगे ॥
प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चानघ ।

उनकी ओर देखा ही नहीं जाता। हमारी सेना प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है, अब युद्ध करनेकी इच्छा नहीं होती। इस नरसंहारकी अपेक्षा तो जंगलमें रहकर जीवन बिता देना बड़ा ही अच्छा है। युद्ध ठानकर मैंने विनाशके पथपर पैर रक्खा है। आपकी क्या सम्मति है? आप धर्मके अनुकूल मेरे हितका उपदेश कीजिये।' श्रीकृष्णने भीम, अर्जुन आदि पाण्डवोंके बलकी प्रशंसा करते हुए कहा कि "चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है। आपके भाई भीष्मको परास्त कर सकते हैं, परंतु यदि इनपर आप विश्वास न रखते हों तो मुझे युद्ध करनेकी आज्ञा दीजिये। अर्जुन यदि स्वयं भीष्मको मारना नहीं चाहते, तो मैं स्वयं उनके सामने भीष्मको मारूँगा। यदि केवल भीष्मके मरनेसे ही आपको विजयकी आशा है तो मैं अकेले ही कल भीष्मको मार डालूँगा। मैं आप लोगोंसे अलग नहीं हूँ। जो आपका शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु है। विशेष करके अर्जुन मेरे भाई, सखा, सम्बन्धी और शिष्य हैं। मैं उनके लिये अपने शरीरका मांस काटकर दे सकता हूँ। भीष्मको मारना कौन-सी बड़ी बात है?"

युधिष्ठिरने कहा—"भगवन्! तुम्हारा कहना सर्वथा ठीक है। तुम्हारे सामने कोई भी नहीं ठहर सकता। मेरा यह सौभाग्य है कि मैंने तुम्हें सहायक पाया है; परंतु अपने गौरव और तुम्हारे गौरवका ख्याल करके मैं तुम्हें युद्धमें लगाना नहीं चाहता। जब लोग तुम्हें प्रतिज्ञा तोड़नेवाला कहेंगे तो मेरे हृदयमें कितनी व्यथा होगी? श्रीकृष्ण! भीष्म मुझपर अपार स्नेह करते हैं, बचपनमें पिताकी मृत्युके बाद उन्होंने ही मेरा लालन-पालन किया। उन्होंने मुझसे वादा किया है कि हम तुम्हारी जीतकी बात किया करेंगे और दुर्योधनकी ओरसे

लड़ेंगे। अब उनपर विजय प्राप्त करनेका उपाय उन्हींसे पूछना चाहिये मुझे तो यही ठीक जँचता है, आगे तुमलोगोंकी जो सम्मति हो। श्रीकृष्णने युधिष्ठिरकी बातोंका अनुमोदन किया, सब भीष्मपितामहके पास गये।

यथायोग्य शिष्टाचारके पश्चात् भीष्मपितामहने कहा—'वीरो बताओ तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं क्या करूँ? वह कार्य कठिन होनेपर भी मैं अवश्य करूँगा।' युधिष्ठिरने पितामहके बार-बार पूछने पर दीनभावसे कहा—'पितामह! हमारी जीत कैसे हो? हमें राज्य किस प्रकार मिले? इस नरसंहारसे हमलोग कैसे बचें? आपके जीवित रहते यह सब सम्भव नहीं। आप कृपा करके अपनी मृत्युका उपाय हमें बता दीजिये।' भीष्मने कहा—'मेरे जीते जी तुम जीत नहीं सकते। यदि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो तो मुझपर कठोर प्रहार करके पहले मुझे मार डालो। मैं तुम्हें कठोर-से-कठोर बाण चलानेकी आज्ञा देता हूँ। तुम पहले मेरे मारनेका ही यत्न करो।'

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—'आपको इन्द्रके सहित सब देवता और दैत्य इकट्ठे होकर जीतना चाहें तो भी जीत नहीं सकते। अब आप ही बतलावें कि आपको हमलोग कैसे जीतें?' भीष्मपितामहने कहा—'बात तो ऐसी ही है, यदि मैं शस्त्रास्त्रका परित्याग कर दूँ, तभी देवता भी मार सकते हैं। जबतक हाथमें शस्त्र रहेंगे तबतक मुझे कोई भी नहीं मार सकेगा। धर्मपुत्र! मेरा यह नियम है कि शस्त्रका त्याग किये हुए, कवचहीन, गिरे हुए, ध्वजाहीन, भागते हुए, डरे हुए, शरणागत, स्त्री, स्त्रियोंके नाम रखनेवाले, विकलाङ्ग, अपने पिताके एकमात्र पुत्र, संतानहीन और नपुंसकसे युद्ध न करूँ।

मैंने पहले ही प्रतिज्ञा की है कि द्रुपदके पुत्र शिखण्डीपर मैं शस्त्रप्रहार नहीं कर सकता; क्योंकि पहले वह स्त्री रह चुका है । इसलिये महारथी अर्जुन शिखण्डीकी आड़मेंसे मुझे तीक्ष्ण बाण मारें । शिखण्डी अमंगलध्वज और पहलेका स्त्री है इसलिये धनुष-बाण हाथमें रहनेपर भी मैं उसपर वार नहीं करूँगा । मुझे श्रीकृष्ण या अर्जुन ही मार सकते हैं, सो भी शस्त्रका परित्याग करनेपर । तुम्हारे जय प्राप्त करनेका यही उपाय है ।'

भीष्मकी अनुमति लेकर श्रीकृष्ण और पाण्डव अपने शिविरमें आये । शिविरपर आकर अर्जुन बहुत खिन्न हुए । अर्जुनने कहा—'श्रीकृष्ण ! बचपनमें मैं जिनकी गोदमें खेलता था, जिनकी दाढ़ी नोचता था और जिनके शरीरपर धूल उछालता था, जब मैं पिता कहकर पुकारता था, तब जो बड़े स्नेहसे मुझे पुचकारकर कहते कि 'मैं तेरे पिताका पिता हूँ' उनसे ही मैं युद्ध करूँगा, उन्हींकी मैं हत्या करूँगा और शिखण्डीकी आड़में रहकर उन्हें ही मैं मारूँगा । श्रीकृष्ण ! यह कार्य मुझसे नहीं हो सकता । भीष्म मेरी सारी सेना नष्ट कर दें, जय हो या पराजय--मैं उन्हें नहीं मार सकता ।' भगवान् श्रीकृष्णने संक्षेपरूपसे फिर गीताका उपदेश दुहराया और कहा कि ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर, जय-पराजयकी आशा छोड़कर, लाभ-हानिकी चिन्ता छोड़कर, जो युद्धमें सामने आवे उसे मारना ही क्षत्रियका धर्म है ।' बहुत समझाने-बुझानेपर अर्जुनने स्वीकार किया और शिखण्डीको आगे करके युद्ध करना तै रहा ।

दसवें दिन बड़ी घमासान लड़ाई हुई, उसके विस्तारका वर्णन करना यहाँ अभीष्ट नहीं है । भीष्म और अर्जुनका बड़ा भीषण युद्ध

हुआ । शिखण्डी तो केवल बहानेके लिये आगे खड़ा था, उसके बाणोंसे भीष्म पितामहको करारी चोट भी नहीं आती थी । शिखण्डीके सामने होनेके कारण वे खुलकर प्रहार भी नहीं कर सकते थे । भीष्म युद्धभूमिमें खड़े-खड़े सोचने लगे कि यदि भगवान् श्रीकृष्ण इनके रक्षक नहीं होते तो मैं पाँचों पाण्डवोंको एक ही धनुषसे मार डालता, किंतु पाण्डव मारे नहीं जा सकते और स्त्रीजाति होनेके कारण मैं शिखण्डीको मार नहीं सकता । ऐसी स्थितिमें अब युद्ध न करना ही ठीक जँचता है । मुझे इच्छामृत्यु प्राप्त है । इस समय भगवान् श्रीकृष्ण सामने खड़े हैं, उनके सामने ही बाणशय्यापर सो जाना मेरे लिये परम हितकी बात है । अब इन जगत्के बखेड़ोंसे मेरा क्या मतलब है ? पाण्डवोंकी विजय निश्चित है, तब मैं कुछ दिनोंतक और जीवित रहकर उनकी विजयमें अड़चन क्यों डालूँ ?

भीष्म यही सब सोच रहे थे । उस समय आकाशमें स्थित ऋषियों और वसुओंने भीष्मको सम्बोधन करके कहा—'भीष्म ! तुम्हारा सोचना बहुत ठीक है, यदि तुम अपना, हमारा और सारे जगत्का हित करना चाहते हो तो अब लड़ना बंद कर दो । तुमने अपने कर्तव्यके सम्बन्धमें ठीक ही सोचा है । तुम्हें मर्त्यलोकमें बहुत दिन हो गये, अब हमलोगोंके लोकमें आओ ।' ऋषियों और वसुओंके मुँहसे यह बात निकलते ही शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा चलने लगी, देवलोकमें नगाड़े बजने लगे और देवता भीष्मपर आकाशसे पुष्पवर्षा करने लगे । वह आकाशवाणी भीष्म और संजयके अतिरिक्त और किसीने नहीं सुनी ।

भीष्मने देवताओं और

ागोंसे पीड़ित होने रहनेपर भी शस्त्र-प्रहारका परित्याग कर दिया। शिखण्डीने भीष्मके वक्षःस्थलपर नौ बाण मारे, परंतु उनसे वे विचलित नहीं हुए। इसके पश्चात् अर्जुन और शिखण्डीने भीष्मपर बहुत-से बाण चलाये, उनका सारा शरीर बाणोंसे छिद गया। भीष्मके शरीरमें दो अंगुल भी ऐसी जगह नहीं थी जहाँ अर्जुनके बाण न घुस गये हों। दसवें दिनके युद्धमें सूर्यास्तके कुछ पहले महात्मा भीष्म रथसे नीचे गिर पड़े। आकाशमें देवता और पृथ्वीमें सब राजा हाहाकार करने लगे। उस समय पृथ्वी काँप उठी और अन्तरिक्षमें घोर शब्द होने लगा। उनके शरीरमें इतने बाण घुसे हुए थे कि उनका शरीर पृथ्वी-पर न जा सका, बाणोंकी ही शय्या लग गयी। सिर नीचे लटक गया। उस समय अन्तरिक्षमें यह आवाज आयी कि महात्मा भीष्मने दक्षिणायनमें शरीर-त्याग कैसे किया? भीष्म सचेत हो गये। उन्होंने कहा—'मैं अभी जीवित हूँ।' सब लोगोंने प्रसन्नता प्रकट की।

हिमवान्की पुत्री भीष्मकी माता गङ्गाने भीष्मकी इच्छा जानकर महर्षियोंको हंसके रूपमें उनके पास भेजा। भीष्मके पास जाकर उन्होंने उनकी प्रदक्षिणा की। उन्होंने आपसमें बात की कि भीष्मने दक्षिणायनमें प्राणत्याग कैसे किया? भीष्मने उनसे कहा कि 'मैं दक्षिणायनभर जीवित रहूँगा, सूर्यके उत्तरायण होनेपर अपने धाम जाऊँगा। पिताके कृपाप्रसादसे मुझे मृत्युपर आधिपत्य प्राप्त है, मैं जब चाहूँ तभी मर सकता हूँ।'

भीष्मके गिरते ही युद्ध बंद हो गया। उनके पास सभी वीर इकट्ठे हो गये। द्रोणाचार्य तो यह समाचार सुनकर मूर्च्छित ही हो गये। उनके होशमें आनेपर सब-के-सब वीर भीष्मपितामहके

हुआ । शिखण्डी तो केवल बहानेके लिये आगे खड़ा था, उसके बाणोंसे भीष्म पितामहको करारी चोट भी नहीं आती थी । शिखण्डीके सामने होनेके कारण वे खुलकर प्रहार भी नहीं कर सकते थे । भीष्म युद्धभूमिमें खड़े-खड़े सोचने लगे कि यदि भगवान् श्रीकृष्ण इनके रक्षक नहीं होते तो मैं पाँचों पाण्डवोंको एक ही धनुषसे मार डालता, किंतु पाण्डव मारे नहीं जा सकते और स्त्रीजाति होनेके कारण मैं शिखण्डीको मार नहीं सकता । ऐसी स्थितिमें अब युद्ध न करना ही ठीक जँचता है । मुझे इच्छामृत्यु प्राप्त है । इस समय भगवान् श्रीकृष्ण सामने खड़े हैं, उनके सामने ही बाणशय्यापर सो जाना मेरे लिये परम हितकी बात है । अब इन जगत्के बखेड़ोंसे मेरा क्या मतलब है ? पाण्डवोंकी विजय निश्चित है, तब मैं कुछ दिनोंतक और जीवित रहकर उनकी विजयमें अड़चन क्यों डालूँ ?

भीष्म यही सब सोच रहे थे । उस समय आकाशमें स्थित ऋषियों और वसुओंने भीष्मको सम्बोधन करके कहा—'भीष्म ! तुम्हारा सोचना बहुत ठीक है, यदि तुम अपना, हमारा और सारे जगत्का हित करना चाहते हो तो अब लड़ना बंद कर दो । तुमने अपने कर्तव्यके सम्बन्धमें ठीक ही सोचा है । तुम्हें मर्त्यलोकमें बहुत दिन हो गये, अब हमलोगोंके लोकमें आओ ।' ऋषियों और वसुओंके मुँहसे यह बात निकलते ही शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा चलने लगी, देवलोकमें नगाड़े बजने लगे और देवता भीष्मपर आकाशसे पुष्पवर्षा करने लगे । वह आकाशवाणी भीष्म और संजयके अतिरिक्त और किसीने नहीं सुनी ।

भीष्मने देवताओं और ऋषियोंका अभिप्राय जानकर अर्जुनके

बाणोंसे पीड़ित होते रहनेपर भी शस्त्र-प्रहारका परित्याग कर दिया। शिखण्डीने भीष्मके वक्षःस्थलपर नौ बाण मारे, परंतु उनसे वे विचलित नहीं हुए। इसके पश्चात् अर्जुन और शिखण्डीने भीष्मपर बहुत-से बाण चलाये, उनका सारा शरीर बाणोंसे छिद गया। भीष्मके शरीरमें दो अंगुल भी ऐसी जगह नहीं थी जहाँ अर्जुनके बाण न घुस गये हों। दसवें दिनके युद्धमें सूर्यास्तके कुछ पहले महात्मा भीष्म रथसे नीचे गिर पड़े। आकाशमें देवता और पृथ्वीमें सब राजा हाहाकार करने लगे। उस समय पृथ्वी काँप उठी और अन्तरिक्षमें घोर शब्द होने लगा। उनके शरीरमें इतने बाण घुसे हुए थे कि उनका शरीर पृथ्वी-पर न जा सका, बाणोंकी ही शय्या लग गयी। सिर नीचे लटक गया। उस समय अन्तरिक्षने यह आवाज आयी कि महात्मा भीष्मने दक्षिणायनमें शरीर-त्याग कैसे किया? भीष्म सचेत हो गये। उन्होंने कहा—'मैं अभी जीवित हूँ।' सब लोगोंने प्रसन्नता प्रकट की।

हिमवान्‌की पुत्री भीष्मकी माता गङ्गाने भीष्मकी इच्छा जानकर महर्षियोंको हंसके रूपमें उनके पास भेजा। भीष्मके पास जाकर उन्होंने उनकी प्रदक्षिणा की। उन्होंने आपसमें बात की कि भीष्मने दक्षिणायनमें प्राणत्याग कैसे किया? भीष्मने उनसे कहा कि 'मैं दक्षिणायनभर जीवित रहूँगा, सूर्यके उत्तरायण होनेपर अपने धाम जाऊँगा। पिताके कृपाप्रसादसे मुझे मृत्युपर आधिपत्य प्राप्त है, मैं जब चाहूँ तभी मर सकता हूँ।'

भीष्मके गिरते ही युद्ध बंद हो गया। उनके पास सभी वीर इकट्ठे हो गये। द्रोणाचार्य तो यह समाचार सुनकर मूर्च्छित ही हो गये। उनके होशमें आनेपर सब-के-सब वीर भीष्मपितामहके

पास उपस्थित हुए । भीष्मने सबसे स्नेहके साथ कहा—'पधारो !
मैं तुमलोगोंका स्वागत करता हूँ, तुम्हें देखकर प्रसन्न हो रहा हूँ ।'
भीष्मका सिर नीचे लटक रहा था । उन्होंने सबका स्वागत-सत्कार
करनेके बाद कहा—'राजाओ ! मेरा सिर बहुत नीचे लटक रहा
है, मुझे तकियेकी आवश्यकता है ।' राजालोग और कौरवगण उसी
समय बढ़िया, कोमल और मूल्यवान् तकिये लेकर दौड़ आये ।
परंतु भीष्मने उन्हें स्वीकार न करके कहा—'ये तकिये वीरशय्याके
योग्य नहीं हैं ।' अर्जुनकी ओर देखकर उन्होंने कहा—'वीर अर्जुन !
तुम इस वीरशय्याके योग्य जो तकिया समझते हो, वही तकिया
मुझे दो ।' अर्जुनने गाण्डीव धनुष चढ़ाकर उनकी आज्ञा ली और
तीन बाण भीष्मपितामहके मस्तकमें मारे । इससे उनका सिर ऊपर
ठहर गया । उन्होंने अर्जुनसे कहा—'तुम बड़े बुद्धिमान् हो ।
यदि तुम ऐसी तकिया नहीं देते तो मैं तुमपर कुपित हो जाता
और शाप दे देता । धार्मिक क्षत्रियोंके लिये ऐसी ही शय्या और
ऐसा ही तकिया चाहिये ।'

पितामहने राजाओंसे कहा—'मुझे अब योग्य तकिया मिल
गया । सूर्यके उत्तरायण होनेतक मैं इसी शय्यापर लेटा रहूँगा ।
तुमलोग इसके चारों ओर खाई खोद दो । मैं इसी शय्यापर पड़ा-
पड़ा भगवान्का स्मरण करूँगा । मेरा एक अनुरोध और भी है । यदि
किसी प्रकार युद्ध बंद हो सके तो कर दो ।' उसी समय दुर्योधन-
की आज्ञासे बहुत-से शल्य-चिकित्सामें निपुण सुशिक्षित वैद्य मरहम-
पट्टीका सामान लेकर भीष्मपितामहके पास आये । भीष्मने उन्हें
देखकर दुर्योधनसे कहा—'इन्हें जो कुछ देना है देकर सत्कारके

साथ विदा कर दो। मैंने उत्तम गति प्राप्त कर ली है, वैद्योंकी क्या आवश्यकता है। मैं शरशय्यापर पड़ा हुआ हूँ। अब आरोग्य होनेकी इच्छा करना उचित नहीं है। इन बाणोंकी चितामें ही मुझे भस्म करना।' दुर्योधनने वैद्योंको विदा कर दिया। भीष्मकी धर्मनिष्ठा और धर्मानुकूल मृत्यु देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। सबने उन्हें प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की और अनेकों रक्षक नियुक्त करके सब लोग अपने-अपने शिविरमें चले गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल सब लोग शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास आये। सबके बैठ जानेपर भीष्मने अपने पीनेके लिये जल माँगा। उसी समय राजा लोग अनेकों प्रकारका उत्तम भोजन और स्वादिष्ट जल ले आये। भीष्मने यह देखकर कहा कि 'मैं अब इस शरशय्यापर लेटा हुआ हूँ सही, परंतु मर्त्यलोकमें नहीं हूँ। अब इस लोकका सुन्दर भोजन और जल नहीं ग्रहण करना चाहिये।' इतना कहकर भीष्मने अर्जुनका स्मरण किया। अर्जुनने पितामहके पास जाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर नम्रतासे कहा—'पूजनीय पितामह! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' भीष्मने पराक्रमी अर्जुनका अभिनन्दन करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बेटा! तुम्हारे बाणोंकी जलनसे मेरा शरीर जल रहा है, मुँह सूख रहा है और मर्मस्थलोंमें व्यथा हो रही है। मुझे प्यास लग रही है, इसलिये तुम जल देकर मेरी प्यास बुझाओ। तुम्हारे सिवा मुझे और कोई जल पिलानेवाला नहीं दीखता।'

भीष्मकी आज्ञा पाकर अर्जुनने अपने धनुषपर डोरी चढ़ायी, वज्रकी कड़कके समान उसकी आवाज सुनकर बड़े-बड़े वीर डर

गये। धनुषपर वाण चढ़ाकर अर्जुनने पितामहकी प्रदक्षिणा की और पर्जन्य अस्त्रका प्रयोग करके पितामहको दाहिनी बगलमें पृथ्वीपर वह वाण मारा। पृथ्वी फट गयी और उस स्थानसे सुगन्ध-पूर्ण, अमृततुल्य, मधुर, निर्मल, शीतल जलकी धारा ऊपर निकली। वह जल पीकर महात्मा भीष्म बहुत प्रसन्न और तृप्त हुए। राजा लोग विस्मित हो गये, कौरव लोग डरके मारे सिकुड़ गये।

भीष्मने सब राजाओंके सामने अर्जुनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा—'बेटा अर्जुन! तुमने आज जो काम कर दिखाया वह तुम्हारे लिये कुछ अद्भुत नहीं है। नारदने मुझसे कहा था कि तुम पुरातन ऋषि नर हो। सब देवताओंकी सहायतासे इन्द्र भी वह काम नहीं कर सकते, जो तुम अकेले कर सकते हो। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण तुम्हारे सहायक हैं। पृथ्वीपर तुम्हारे-जैसा धनुर्धारी और कोई नहीं है। हम सब लोगोंने दुष्ट दुर्योधनको बहुत समझाया, परंतु वह किसीकी बात नहीं मानता; वह भीमसेनके बलसे बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जायगा।'

भीष्मपितामहकी बात सुनकर दुर्योधन उदास हो गया। भीष्मने कहा—'दुर्योधन! यह क्रोध करनेका समय नहीं है। अर्जुनने मुझे जिस प्रकार जल पिलाया, तुमने अपनी आँखोंसे उसे देखा है। कौन है पृथ्वीपर ऐसा काम करनेवाला वीर? श्रीकृष्ण और अर्जुनके अतिरिक्त सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता और कौन है? उन्हें कोई नहीं जीत सकता। उनसे मेल करनेमें ही तुम्हारी और सारे जगत्की भलाई है। जबतक तुम्हारे प्रिय परिजन जीवित हैं तबतक सन्धि कर लेना उत्तम है। अर्जुनने जो कुछ

किया है वह तुम्हारी सावधानीके लिये पर्याप्त है। मेरी मृत्यु ही इस हत्याकाण्डका अन्त हो। पाण्डवोंको आधा राज्य दे दो। वैर भूलकर सब लोग प्रेमसे गले मिलो। तुमलोग इस समय जिस मार्गसे चल रहे हो, वह सर्वनाशका मार्ग है।' भीष्म इतना कहकर चुप हो गये। सब लोग उनसे अनुमति लेकर अपने-अपने स्थानपर चले गये।

जब सब लोग चले गये, तब भीष्मपितामहके पास कर्ण आया। कर्णकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने गद्गद स्वरसे कहा—'पितामह! मैं राधाका पुत्र कर्ण हूँ। मेरे निरपराध होनेपर भी आप मुझसे लागडाँट रक्खा करते थे।' भीष्मने कर्णकी बात सुनकर धीरे-धीरे आँखें खोलीं। वहाँसे रक्षकोंको हटा दिया और एक हाथसे पकड़कर उसे अपने हृदयसे लगा लिया। उन्होंने कहा—'प्यारे कर्ण! आओ, आओ, तुमने इस समय मेरे पास आकर बड़ा उत्तम कार्य किया है। वीर! मुझसे देवर्षि नारद और महर्षि व्यासने कहा है कि तुम राधाके पुत्र नहीं, कुन्तीके पुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं हैं, साक्षात् भगवान् सूर्य हैं। मैं सत्य-सत्य कहता हूँ; मेरे हृदयमें तुम्हारे प्रति तनिक भी द्वेषमात्र नहीं है। मैंने जान-बूझकर तुम्हारे प्रति कटु वचनोंका प्रयोग इसलिये किया है कि तुम्हारा तेज घटे। संसारमें तुम्हारे समान पराक्रमी बहुत ही कम हैं। तुम ब्रह्मनिष्ठ, शूर और श्रेष्ठ दानी हो। तुम्हारे उत्कर्षसे कौरवोंका घमंड और बढ़ेगा तथा वे पाण्डवोंसे अधिकाधिक द्वेष करेंगे, इसीलिये मैं तुम्हारा अपमान किया करता था। मगध-राज जरासन्ध भी तुम्हारे सामने नहीं ठहर सकते थे। इस समय यदि तुम मुझे प्रसन्न करना चाहते हो तो एक काम करो। तुम

पाण्डवोंसे मिल जाओ। फिर युद्ध बंद हो जायगा, मेरी मृत्युसे ही यह वैरकी आग बुझ जायगी और प्रजामें शान्तिका विस्तार होगा।'

कर्णने कहा—'पितामह! आपकी एक-एक बात ठीक है। मैं कुन्तीका पुत्र हूँ, सूतका नहीं; परंतु दुर्योधनके धन और कृपासे पलकर मैं इतना बड़ा हुआ हूँ, यह भी सत्य है। मैं दुर्योधनको अपना जीवन अर्पित कर चुका हूँ। मेल होनेकी कोई आशा दीखती नहीं। मैं जानता हूँ कि श्रीकृष्णकी सहायतासे पाण्डव अजेय हैं। फिर भी मैं जान-बूझकर उनसे युद्ध करनेका उत्साह रखता हूँ। इसलिये आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं अर्जुनसे लड़ूँ। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि आपसे आज्ञा लेकर ही युद्ध करूँ। मैंने क्रोध या चञ्चलताके कारण कुछ भी भला-बुरा कहा हो, उसे और मेरे दुर्व्यवहारको क्षमा कीजिये।'

भीष्मपितामहने कहा—'बेटा! यदि यह वैर-भाव नहीं मिट सकता तो तुम युद्ध करो। आलस्य, प्रमाद और क्रोध छोड़कर, शक्ति और उत्साहके अनुसार, सदाचारका पालन करते हुए अपने निश्चित कर्त्तव्यको पूर्ण करो। तुम्हारी जो इच्छा हो वह पूर्ण हो। अर्जुनके बाणोंसे तुम्हें उत्तमगति प्राप्त होगी; क्षत्रियके लिये धर्मयुद्ध ही सर्वोत्तम कर्म है। यदि इस लोकमें तुमलोग सुख-शान्तिसे न रह सके तो न सही, धर्मविपरीत काम करके कहीं उस लोकमें भी सुख-शान्तिसे वञ्चित न हो जाना। इसलिये मैं तुम्हें सलाह देता हूँ कि सर्वदा धर्मकी रक्षा करते हुए ही युद्ध करना।'

भीष्मसे अनुमति लेकर कर्ण चला गया। भीष्म शरशय्यापर पड़े हुए सम्पूर्ण मनोवृत्तियोंसे भगवान्‌का चिन्तन करने लगे।

श्रीकृष्णके द्वारा भीष्मका ध्यान, भीष्मपितामहसे उपदेशके लिये अनुरोध

यदि केवल व्यवहारकी दृष्टिसे ही देखा जाय तो भी यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि जीव बड़े कृतघ्न हैं। जिन्होंने हमें प्रलयकी घोर निद्रामेंसे जगाया, जिन्होंने हमें समझने-बूझनेकी बुद्धि दी, जिन्होंने हमें मनुष्य बनाया, जिनकी कृपा-दृष्टिसे, जिनकी शक्तिसे हम जीवित हैं, जिनकी गोदमें हैं, जो एक क्षणके लिये भी हमें अपनी आँखोंसे ओझल नहीं करते, उन्हीं परमपिता, परम कारुणिक, सर्वशक्तिमान् प्रभुको भूलकर हम विषयोंका चिन्तन करते हैं। जगत्‌के तुच्छ जीवोंकी सेवा करते हैं, उनके सामने कुत्तोंकी भाँति चापलूसी करते फिरते हैं। जिनका सब कुछ है उनसे तो हमने कुछ नाता ही नहीं जोड़ा, उन्हें तो भुला ही दिया। नाता जोड़ा उन लोगोंसे, याद किया उन लोगोंको जो हमें नरककी धधकती हुई आगमें जलानेको तैयार रहते हैं। इतना सब होनेपर भी परम दयालु प्रभु हमारी भूलोंपर दृष्टि नहीं डालते। वे स्मरण करते ही आ जाते हैं, ध्यान करते ही ध्यान करने बैठ जाते हैं, एक पग चलते ही सौ पग दौड़ आते हैं। यहाँतक कि कोई उनका अनिष्ट करने भी उनके पास जाय तो वे उसकी भलाई ही करते हैं। मैं सोच भी नहीं सकता कि इतने कृपालु प्रभुको

हुए। इस प्रकार बड़ी नम्रतासे कहे गये युधिष्ठिरके वचन श्रीकृष्णतक नहीं पहुँच सके। उस समय श्रीकृष्ण पलंगपर बैठे हुए दीख रहे थे, परंतु वास्तवमें वे पलंगपर बैठे हुए नहीं थे। वे भीष्मके पास थे। युधिष्ठिरने देखा कि श्रीकृष्ण अभी ध्यानमग्न हैं, उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी है। वे आश्चर्यचकित हो गये।

बहुत देरके बाद युधिष्ठिरने पुनः भगवान्‌से प्रार्थना की—'प्रभो! आप किसका ध्यान कर रहे हैं? इस समय तीनों लोकोंमें मङ्गल तो है न? आप इस समय जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनोंसे अतीत होकर तुरीयपदमें स्थित हैं। आपने पाँचों प्राण रोककर इन्द्रियों-को मनमें, इन्द्रियों और मनको बुद्धिमें एवं बुद्धिको आत्मामें स्थापित कर लिया है। आपके रोएँ तक नहीं हिलते, आपका शरीर पत्थर-की तरह निश्चल हो रहा है। आप वायुसे सुरक्षित दीपककी भाँति स्थिर भावसे स्थित हैं। आपके इस प्रकार ध्यान करनेका क्या कारण है? यदि मैं वह बात जाननेका अधिकारी होऊँ और कोई गुप्त बात न हो तो आप मुझसे अवश्य कहें। भगवन्! आप ही सारे संसारकी रचना और संहार करनेवाले हैं। क्षर, अक्षर, प्रकृति-पुरुष, व्यक्त-अव्यक्त सब आपके ही विस्तार हैं। आप अनादि, अनन्त आदिपुरुष हैं। मैं नम्रता और भक्तिसे आपको प्रणाम करता हूँ और जानना चाहता हूँ कि आप क्यों, किसका ध्यान करते थे।'

युधिष्ठिरकी विनती सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने मन और इन्द्रियोंको यथास्थान स्थापित किया। तत्पश्चात् मुसकराते हुए कहा—'युधिष्ठिर! भला आपने गुप्त रखनेकी कौन-सी बात है? इस समय

मैं आपके दादा वृद्ध पितामह भीष्मका चिन्तन कर रहा था । धर्म-राज ! वे बुझती हुई आगकी तरह शरशय्यापर पड़े हुए मेरा ध्यान कर रहे हैं । मेरी प्रतिज्ञा है कि जो मेरा ध्यान करे, उसका मैं ध्यान करूँ, या यों भी कह सकते हैं कि मेरा ऐसा स्वभाव बन गया है कि जो मेरा ध्यान करता है उसका किये बिना मुझसे रहा ही नहीं जाता । इसलिये मेरा मन उन्हींकी ओर था । जिनकी धनुष्टंकारको इन्द्र भी नहीं सह सकते थे, जिनके बाहुबलके सामने कोई भी राजा नहीं ठहर सका, परशुराम तेईस दिनतक युद्ध करके भी जिन्हें नहीं हरा सके, वही महात्मा भीष्म आज आत्म-समर्पण करके मेरी शरणमें आये हैं । भगवती भागीरथीने जिन्हें गर्भमें धारण करके अपनी कोखको धन्य बनाया था, महर्षि वशिष्ठने जिन्हें ज्ञानोपदेश करके अपने ज्ञानको सफल किया था, जिन्हें अपना शिष्य बनाकर परशुरामने अपने गुरुत्वको गौरवपूर्ण किया था, जो सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग विद्याओंके आधार, दिव्य शस्त्र-अस्त्रोंके प्रधान आचार्य और भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों कालोंको जानने-वाले हैं, वही महात्मा भीष्म आज मन और इन्द्रियोंको संयत करके मेरी शरणमें आये हैं । इसीलिये मैं उनका चिन्तन कर रहा था । प्यारे धर्मराज ! उनके इस लोकसे चले जानेपर यह पृथ्वी चन्द्र-हीन रात्रिकी भाँति शोभाहीन हो जायगी । उनके न रहनेपर भूमण्डलमें ज्ञानका ह्रास हो जायगा । इसलिये आप उनके पास जाकर, चारों वर्णों और आश्रमोंका, चारों विद्याओंका, चारों पुरुषार्थोंका और जो कुछ आपकी इच्छा हो उसका रहस्य पूछ लीजिये ।'

युधिष्ठिरने आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कण्ठसे कहा—'श्रीकृष्ण ! आपने भीष्मके प्रभावका जो वर्णन किया है, उसपर मुझे पूर्ण विश्वास है । अनेक ऋषि-महर्षियोंने मुझे उनका महत्त्व बतलाया है । फिर आप तो तीनों लोकोंके स्वामी हैं । आपकी बातपर भला कैसे संदेह हो सकता है ? आप मुझपर बड़ी कृपा रखते हैं, आप मुझे अपने साथ ही उनके पास ले चलिये । उत्तरायण सूर्य होते ही वे इस लोकसे चले जायँगे, इसलिये ऐसे अवसरपर उन्हें आपका दर्शन मिलना चाहिये । आप आदिदेव परमब्रह्म हैं । आपके दर्शनसे पितामह कृतकृत्य हो जायँगे ।' धर्मराज युधिष्ठिरकी प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने सात्यकिसे रथ तैयार करानेको कहा ।

भगवान् श्रीकृष्ण, धर्मराज युधिष्ठिर, कृपाचार्य, भीम, अर्जुन आदि सब भीष्मपितामहके पास चले । रास्तेमें धर्मराज युधिष्ठिरके पूछनेपर श्रीकृष्णने परशुरामजीके चरित्रका वर्णन किया । भीष्मके पास पहुँचकर उन लोगोंने देखा कि वे संध्याकालीन सूर्यके समान निस्तेज होकर शरशय्यापर पड़े हैं । बड़े-बड़े महात्मा उन्हें घेरे हुए बैठे हैं । वे दूरसे ही अपनी सवारियोंसे उतरकर वहाँ गये और व्यास आदि महर्षियों समेत सबको प्रणाम करके भीष्मके चारों ओर घेरकर बैठ गये ।

श्रीकृष्णने महात्मा भीष्मको सम्बोधन करके कहा—'आपका ज्ञान तो पहलेकी ही भाँति है न ? पाण्डवोंके घावकी पीड़ाके कारण आपकी बुद्धि अस्थिर तो नहीं हुई है ? अपने पिता धर्मपरायण

तुके वरदानसे आप अपनी इच्छाके अनुसार मृत्युके अधिकारी
! । बड़े-बड़े महात्माओं और देवताओंको भी इच्छामृत्यु प्राप्त
है । शरीरमें सूई चुभ जानेपर लोगोंको उसकी पीड़ा सहन
होती, परंतु आपके शरीरमें तो अनेकों बाण बिंधे हुए हैं ।
स्वयं ही बड़े-बड़े देवताओंको उपदेश कर रहे हैं, आपसे जन्म-
के सम्बन्धमें क्या कहा जाय ! आप समस्त धर्मोंका रहस्य, वेद-
, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सबका तत्त्व जानते हैं । आपके
गुणी मनुष्य संसारमें न देखा गया है और न तो सुना गया
आप अपने तपोबलसे जगत्‌की सृष्टि कर सकते हैं । बन्धु-
ओंका संहार होनेके कारण धर्मराज युधिष्ठिर इस समय शोकाकुल
हैं । आप सभी धर्मोंका रहस्य जानते हैं । उनकी शङ्काओंका
गन करनेवाला कोई दूसरा नहीं दीखता । आप कृपा करके
शोकाकुल चित्तको शान्त कीजिये ।'

भीष्मने तनिक सिर उठाकर अञ्जलि बाँधकर श्रीकृष्णसे कहा—
न् ! आप समस्त कारणोंके कारण और सबके परम-निधान
आप प्रकृतिसे परे और प्रकृतिमें व्याप्त हैं । आप सबके
र और नित्य एकरस अविनाशी सच्चिदानन्द हैं । आपकी शक्ति
र है । अलसीके फूलके समान आपका साँवला शरीर मुझे
ही प्रिय लगता है । उसपर पीताम्बरकी शोभा तो ऐसी मालूम
है मानो वर्षाकालीन मेघपर बिजली स्थिर होकर बैठ गयी हो ।
म भक्तिसे, सच्चे हृदयसे आपकी शरण हूँ ।'

श्रीकृष्णने मुसकराते हुए गम्भीर स्वरसे कहा—'महात्मन् ! आप

मेरे दिव्य शरीरका दर्शन कीजिये। आपकी मुझपर परम भक्ति है, इसीसे मैं यह दिव्य शरीर आपको दिखा रहा हूँ। आप मेरे परम भक्त हैं, आपका स्वभाव बहुत ही सरल है, आप तपस्वी, सत्यवादी, इन्द्रियजित् और दानी हैं। इसलिये आप मेरे दिव्य शरीरके दर्शन पानेके अधिकारी हैं। जो मनुष्य भक्तिहीन हैं, कुटिल स्वभावके हैं और अशान्त हैं, उन्हें मैं दर्शन नहीं देता। आप इस शरीरका परित्याग करके उस दिव्य धाममें जायँगे जहाँसे फिर कभी लौटना नहीं पड़ता। अभी आप छप्पन दिनोंतक जीवित रहेंगे। फिर आपको परमपदकी प्राप्ति होगी। वसुदेवता आकाशमें स्थित होकर आपकी रक्षा कर रहे हैं। आपके शरीर-त्यागके पश्चात् आप-सरीखा कोई तत्त्वज्ञानी नहीं रह जायगा। इसलिये हम आपके पास आये हैं कि आप अपने अनुभूत सम्पूर्ण ज्ञानका वर्णन कर जायँ। इससे आपके अनुभूत धर्म-सिद्धान्तकी रक्षा होगी और धर्मराज युधिष्ठिरका शोक भी दूर हो जायगा।'

भीष्मने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! आपके वचनोंसे मुझे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। मैं भला आपके सामने किस धर्मका वर्णन कर सकता हूँ? संसारमें जितने धर्म-अधर्म कहे जाते हैं, मनुष्योंके लिये जो कुछ कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निश्चित हैं, उन सबके मूलकारण आप ही हैं। जैसे इन्द्रके सामने कोई देव-लोकका वर्णन करे, वैसे ही आपके सामने धर्म-रहस्यका वर्णन करना है। बाणोंके आघातसे मेरा शरीर व्यथित है, हृदय पीड़ित है और बुद्धि क्षीण हो गयी है। वाणी असमर्थ हो गयी है, बल नष्ट हो चुका है। प्राण निकलनेके लिये जल्दी कर रहे हैं। आपके प्रभावसे ही मैं जीवित हूँ। आप सम्पूर्ण ज्ञानोंके निधि हैं। आपके सामने मैं क्या उपदेश कर सकता हूँ? गुरुके सामने

शिष्य क्या बोल सकता है ? इसलिये मुझे क्षमा कीजिये। आप ही धर्मराजको धर्मका उपदेश दीजिये।'

श्रीकृष्णने कहा—'पितामह ! आप सब तत्त्वोंके ज्ञाता, शक्तिशाली और भरतवंशके भूषण हैं। इसलिये आपके ये विनीत वचन आपके योग्य ही हैं। बाणोंके घावके कारण शरीरमें पीड़ा है तो मैं आपको यह वरदान देता हूँ कि आपकी ग्लानि, मूर्छा, जलन और भूख-प्यास मिट जाय, आपके हृदयमें सब ज्ञान जाग्रत् हो जायँ, आपकी बुद्धि निर्मल हो जाय, आपके मनसे रजोगुण और तमोगुण हट जायँ, केवल सत्त्वगुण ही रह जाय। आप धर्म और अर्थके सम्बन्धमें जितना विचार करेंगे आपकी बुद्धि उतनी ही बढ़ती जायगी। आपको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जायगी और आप सब वस्तुओंका रहस्य जान सकेंगे।'

भगवान् श्रीकृष्णकी यह दिव्य वाणी सुनकर वेदव्यास आदि ऋषि-महर्षियोंने उनकी स्तुति की। आकाशमण्डलसे श्रीकृष्ण, भीष्म और पाण्डवोंपर पुष्पवर्षा होने लगी। अप्सराएँ गाने लगीं, गन्धर्व बजाने लगे, शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चलने लगी और दिशाएँ शान्त हो गयीं। सुन्दर-सुन्दर पक्षी चहकने लगे। भीष्मकी चेतना जाग्रत् हो गयी। उनकी बुद्धिमें सम्पूर्ण ज्ञान स्फुरित होने लगा। चारों ओर मङ्गलमय शकुन होने लगे।

संध्या हो चली थी। ऋषियोंकी अनुमतिसे दूसरे दिन फिर यहीं मिलनेकी सलाह करके सब अपने-अपने स्थानपर चले गये।

पितामहका उपदेश

अपनी बुद्धिके द्वारा जिस सत्यका प्रत्यक्ष होता है, यदि उसी सत्यका प्रत्यक्ष सब बुद्धियोंके द्वारा होता, तब तो कहना ही क्या था।' वह एक असन्दिग्ध सत्य होता; परंतु बुद्धि सबकी पृथक्-पृथक् है और सबका प्रत्यक्ष भी पृथक्-पृथक् है। बुद्धियोंकी तो बात ही क्या, ये जो रूप अपनी-अपनी आँखोंसे देख रहे हैं हमलोग, वह भी एक प्रकारका ही नहीं है। सबकी आँखें एक ही सतहपर नहीं हैं और एक ही प्रकारकी शक्ति भी नहीं रखतीं। सबका क्षितिज भिन्न-भिन्न दूरीपर है। एक वृक्षको सब समान मोटा नहीं देखते। एक ही व्यक्तिको सब एक ही रंग-रूपका नहीं देखते। इसका कारण आँखोंका तारतम्य है। इसी प्रकार बुद्धियोंमें भी तारतम्य हुआ करता है। सब सत्यके विभिन्न प्रकारका दर्शन करते हैं। इसीसे किसीका बौद्धिक ज्ञान चाहे जितना ऊँचा हो और वह अपने बौद्धिक निर्णयको चाहे जितनी युक्तियोंसे सिद्ध करता हो, उसका वह ज्ञान और वे युक्तियाँ सर्वथा प्रामाणिक नहीं हैं। जगत्में जो बहुत-से मत-मतान्तर और सैद्धान्तिक भेद हुए हैं उनके मूलमें यही बुद्धिकी विभिन्नता स्थित है। सबने सत्य कहा है, परंतु उस सत्यमें कहनेवालेका व्यक्तित्व और उसकी व्यक्तिगत बुद्धि सम्मिलित है। वही परम सत्य है—यह बात जोर देकर नहीं कही जा सकती।

परंतु एक ऐसा भी ज्ञान है जो सर्वदा एकरस, एकरूप, अविचल और निर्विकार है, जो व्यक्ति और उनकी बुद्धियोंके विभिन्न होनेपर भी विभिन्न नहीं होता। जगत्के ज्ञानकी ओर दृष्टि

रखकर उसे ज्ञान कहनेमें हिचकिचाहट तो अवश्य होती है, परंतु इसके अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं है, जिसके द्वारा अपना भाव प्रकट किया जा सके। वह ज्ञान क्या है ? वह स्वयं आत्मा है, परमात्मा है, भगवान् श्रीकृष्ण हैं। वे जिसके हृदयमें प्रकट हो जाते हैं, उसका व्यक्तित्व लुप्त हो जाता है और उसके द्वारा परम सत्य विशुद्ध ज्ञानका विस्तार होने लगता है। दूसरे शब्दोंमें हम यह भी कह सकते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णका दिया हुआ ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। अपनी बुद्धिसे प्राप्त हुआ ज्ञान तो सर्वथा अप्रामाणिक और आश्रयहीन ज्ञान है। इसीसे महात्मालोग जब-तक भगवान्से ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते, तबतक अपने बौद्धिक ज्ञानका प्रचार नहीं करते; क्योंकि वह प्रचार तो अपने व्यक्तित्वका प्रचार है, जो किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के ज्ञानका आवरण ही है। हाँ, तो अबतक यह बात कही गयी कि महात्मालोग अपने व्यक्तिगत ज्ञान-का नहीं, भगवत्-प्रदत्त ज्ञानका विस्तार करते हैं।

भीष्मका इतना जीवन अध्ययन कर लेनेके पश्चात् हम निस्संकोच भावसे कह सकते हैं कि भीष्म महात्मा पुरुष हैं। उनका जीवन निष्काम कर्मयोगका मूर्तिमान् स्वरूप है। उनके जीवनमें महान् पुरुषार्थ भरा हुआ है। भगवान्पर उनकी अविचल श्रद्धा है। वे एक क्षणके लिये भी भगवान्को नहीं भूलते और यहाँतक कि स्वयं भगवान् भी उनका ध्यान करते हैं। उन्हीं भीष्मके द्वारा भगवान्के ज्ञानका विस्तार होनेवाला है। यह बात इसके पहले अध्यायमें आ चुकी है कि भीष्मने अपने व्यक्तिगत ज्ञानका उपदेश करना अस्वीकार कर दिया। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपने ज्ञान-

का दान किया। अब भीष्म वास्तवमें ज्ञान-उपदेश करनेके अधिकारी हुए। ऐसे अधिकारपर आरूढ़ होकर जो ज्ञानका उपदेश करता है, वही सच्चा उपदेशक है। यों तो आजकल उपदेशकोंकी बाढ़ आ गयी है; परंतु कौन है भीष्म-जैसा उपदेशक, जिसे भगवान्‌का साक्षात् आदेश प्राप्त हुआ है?

पूर्व निश्चयके अनुसार दूसरे दिन सब लोग भीष्मपितामहकी शरशय्याके पास उपस्थित हुए। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि पहलेसे ही आ गये थे। देवर्षि नारद और युधिष्ठिरकी प्रेरणासे भगवान् श्रीकृष्ण-ने भीष्मपितामहसे वार्तालाप प्रारम्भ किया। श्रीकृष्णने कहा—'पितामह! आजकी रातमें आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ? आपका शरीर पीड़ारहित और मन शान्त है न?' पितामहने कहा—'श्रीकृष्ण! तुम्हारी कृपासे मोह, दाह, थकावट, उद्वेग और रोग सब दूर हो गये। तुम्हारी कृपादृष्टिके फलस्वरूप मुझे तीनों कालका ज्ञान हो गया है। वेद-वेदान्तोक्त धर्म, सदाचार, वर्णाश्रम-देश-जाति और कुलके धर्म—सब मेरे हृदयमें जाग गये हैं। इस समय मेरी बुद्धि निर्मल और चित्त स्थिर है। मैं तुम्हारे चिन्तनसे पुनः जीवित हो गया हूँ। अब मैं धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नोंका उत्तर दे सकता हूँ, परंतु एक बात तुमसे पूछनी है। वह यह कि तुमने स्वयं युधिष्ठिरको उपदेश क्यों नहीं दिया?'

श्रीकृष्णने कहा—'पितामह! संसारमें जो कुछ कल्याण और कीर्ति दीख रही है, उसका कारण मैं हूँ। संसारके सब भाव मुझसे पैदा हुए हैं। मैं सम्पूर्ण यशका केन्द्र हूँ, इस बातमें किसीको संदेह नहीं है। इस समय मैंने अपनी विशाल बुद्धि आपके

हृदयमें प्रविष्ट करा दी है। मेरी इच्छा है कि आपके द्वारा ही उपदेश हो और वह संसारमें वेद-वाक्यकी भाँति स्थिर रहे। जो आपके उपदेशोंका अनुसरण करेगा, उसका लोक, परलोक और परमार्थ बनेगा। जन्मसे लेकर आजतक आपमें कोई दोष नहीं देखा गया; आप धर्मके मर्मज्ञ हैं। आपने जीवनभर सत्सङ्ग किया है, ऋषि और देवताओंकी उपासना की है। मैं आपकी कीर्तिको स्थायी बनाना चाहता हूँ। आप मेरी और सबकी इच्छा पूर्ण करें। आपका कल्याण होगा।'

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर पितामहने युधिष्ठिरको प्रश्न करनेकी आज्ञा दी। युधिष्ठिरने उनके पास जाकर चरणोंमें प्रणाम करके बड़े विनीत-भावसे धर्म और अध्यात्म-सम्बन्धी अनेकों प्रश्न किये। भीष्मपितामहने उन सब प्रश्नोंका पृथक्-पृथक् उत्तर दिया। उन सबका वर्णन महाभारतके शान्तिपर्वमें है। प्रत्येक जिज्ञासु स्त्री-पुरुषको उसका स्वाध्याय करना चाहिये। वे सब उपदेश यहाँ किसी प्रकार उद्धृत नहीं किये जा सकते। संक्षेपरूपसे ही उद्धृत किया जाय तो एक बड़ा-सा ग्रन्थ बन सकता है। यहाँ तो नाम-मात्रके लिये उनके कुछ थोड़े-से वचन उद्धृत कर दिये जाते हैं।

वेद्य! मैं जगन्नियन्ता श्रीकृष्ण, धर्म और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके धर्म-सम्बन्धी कुछ बातें बताता हूँ। तुम सावधान होकर सुनो। राजाको चाहिये कि वह अपने उत्तम व्यवहारद्वारा देवताओं, दैवी सम्पत्तिवालों और ब्राह्मणोंको प्रसन्न रक्खे। इनकी प्रसन्नतासे धर्म प्रसन्न होता है और धर्मकी प्रसन्नतासे सब सुख-शान्ति नि[illegible] जीवनमें पुरुषार्थकी बड़ी आवश्यकता है। [illegible]

का दान किया। अब भीष्म वास्तवमें ज्ञान-उपदेश करनेके अधिकारी हुए। ऐसे अधिकारपर आरूढ़ होकर जो ज्ञानका उपदेश करता है, वही सच्चा उपदेशक है। यों तो आजकल उपदेशकोंकी बाढ़ आ गयी है; परंतु कौन है भीष्म-जैसा उपदेशक, जिसे भगवान्‌का साक्षात् आदेश प्राप्त हुआ है?

पूर्व निश्चयके अनुसार दूसरे दिन सब लोग भीष्मपितामहकी शरशय्याके पास उपस्थित हुए। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि पहलेसे ही आ गये थे। देवर्षि नारद और युधिष्ठिरकी प्रेरणासे भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मपितामहसे वार्तालाप प्रारम्भ किया। श्रीकृष्णने कहा—'पितामह! आजकी रातमें आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ? आपका शरीर पीड़ारहित और मन शान्त है न?' पितामहने कहा—'श्रीकृष्ण! तुम्हारी कृपासे मोह, दाह, थकावट, उद्वेग और रोग सब दूर हो गये। तुम्हारी कृपादृष्टिके फलस्वरूप मुझे तीनों कालका ज्ञान हो गया है। वेद-वेदान्तोक्त धर्म, सदाचार, वर्णाश्रम-देश-जाति और कुलके धर्म—सब मेरे हृदयमें जाग गये हैं। इस समय मेरी बुद्धि निर्मल और चित्त स्थिर है। मैं तुम्हारे चिन्तनसे पुनः जीवित हो गया हूँ। अब मैं धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नोंका उत्तर दे सकता हूँ, परंतु एक बात तुमसे पूछनी है। वह यह कि तुमने स्वयं युधिष्ठिरको उपदेश क्यों नहीं दिया?'

श्रीकृष्णने कहा—'पितामह! संसारमें जो कुछ कल्याण और कीर्ति दीख रही है, उसका कारण मैं हूँ। संसारके सब भाव मुझसे पैदा हुए हैं। मैं सम्पूर्ण यशका केन्द्र हूँ, इस बातमें किसीको संदेह नहीं है। इस समय मैंने अपनी विशाल बुद्धि आपके

हृदयमें प्रविष्ट करा दी है। मेरी इच्छा है कि आपके द्वारा ही उपदेश हो और यह संसारमें वेद-वाक्यकी भाँति स्थिर रहे। जो आपके उपदेशोंका अनुसरण करेगा, उसका लोक, परलोक और परमार्थ बनेगा। जन्मसे लेकर आजतक आपमें कोई दोष नहीं देखा गया; आप धर्मके मर्मज्ञ हैं। आपने जीवनभर सत्सङ्ग किया है, ऋषि और देवताओंकी उपासना की है। मैं आपकी कीर्तिको स्थायी बनाना चाहता हूँ। आप मेरी और सबकी इच्छा पूर्ण करें। आपका कल्याण होगा।'

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर पितामहने युधिष्ठिरको प्रश्न करनेकी आज्ञा दी। युधिष्ठिरने उनके पास जाकर चरणोंमें प्रणाम करके बड़े विनीत-भावसे धर्म और अध्यात्म-सम्बन्धी अनेकों प्रश्न किये। भीष्मपितामहने उन सब प्रश्नोंका पृथक्-पृथक् उत्तर दिया। उन सबका वर्णन महाभारतके शान्तिपर्वमें है। प्रत्येक जिज्ञासु स्त्री-पुरुषको उसका स्वाध्याय करना चाहिये। वे सब उपदेश यहाँ किसी प्रकार उद्धृत नहीं किये जा सकते। संक्षेपरूपसे ही उद्धृत किया जाय तो एक बड़ा-सा ग्रन्थ बन सकता है। यहाँ तो नाम-मात्रके लिये उनके कुछ थोड़े-से वचन उद्धृत कर दिये जाते हैं।

बेटा! मैं जगन्नियन्ता श्रीकृष्ण, धर्म और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके धर्म-सम्बन्धी कुछ बातें बताता हूँ। तुम सावधान होकर सुनो। राजाको चाहिये कि वह अपने उत्तम व्यवहारद्वारा देवताओं, दैवी सम्पत्तियों और ब्राह्मणोंको प्रसन्न रक्खे। इनकी प्रसन्नतासे धर्म प्रसन्न होता है और धर्मकी प्रसन्नतासे सब सुख-शान्ति मिलती है। जीवनमें पुरुषार्थकी बड़ी आवश्यकता है। बिना पौरुषके भाग्य कोई

का दान किया। अब भीष्म वास्तवमें ज्ञान-उपदेश करनेके अधिकारी हुए। ऐसे अधिकारपर आरूढ़ होकर जो ज्ञानका उपदेश करता है, वही सच्चा उपदेशक है। यों तो आजकल उपदेशकोंकी बाढ़ आ गयी है; परंतु कौन है भीष्म-जैसा उपदेशक, जिसे भगवान्‌का साक्षात् आदेश प्राप्त हुआ है?

पूर्व निश्चयके अनुसार दूसरे दिन सब लोग भीष्मपितामहकी शरशय्याके पास उपस्थित हुए। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि पहलेसे ही आ गये थे। देवर्षि नारद और युधिष्ठिरकी प्रेरणासे भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मपितामहसे वार्तालाप प्रारम्भ किया। श्रीकृष्णने कहा—'पितामह! आजकी रातमें आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ? आपका शरीर पीड़ारहित और मन शान्त है न?' पितामहने कहा—'श्रीकृष्ण! तुम्हारी कृपासे मोह, दाह, थकावट, उद्वेग और रोग सब दूर हो गये। तुम्हारी कृपादृष्टिके फलस्वरूप मुझे तीनों कालका ज्ञान हो गया है। वेद-वेदान्तोक्त धर्म, सदाचार, वर्णाश्रम-देश-जाति और कुलके धर्म—सब मेरे हृदयमें जाग गये हैं। इस समय मेरी बुद्धि निर्मल और चित्त स्थिर है। मैं तुम्हारे चिन्तनसे पुनः जीवित हो गया हूँ। अब मैं धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नोंका उत्तर दे सकता हूँ, परंतु एक बात तुमसे पूछनी है। वह यह कि तुमने स्वयं युधिष्ठिरको उपदेश क्यों नहीं दिया?'

श्रीकृष्णने कहा—'पितामह! संसारमें जो कुछ कल्याण और कीर्ति दीख रही है, उसका कारण मैं हूँ। संसारके सब भाव मुझसे पैदा हुए हैं। मैं सम्पूर्ण यशका केन्द्र हूँ, इस बातमें किसीको संदेह नहीं है। इस समय मैंने अपनी विशाल बुद्धि आपके

हृदयमें प्रविष्ट करा दी है । मेरी इच्छा है कि आपके द्वारा ही उपदेश हो और वह संसारमें वेद-वाक्यकी भाँति स्थिर रहे । जो आपके उपदेशोंका अनुसरण करेगा, उसका लोक, परलोक और परमार्थ बनेगा । जन्मसे लेकर आजतक आपमें कोई दोष नहीं देखा गया; आप धर्मके मर्मज्ञ हैं । आपने जीवनभर सत्सङ्ग किया है, ऋषि और देवताओंकी उपासना की है । मैं आपकी कीर्तिको स्थायी बनाना चाहता हूँ । आप मेरी और सबकी इच्छा पूर्ण करें । आपका कल्याण होगा ।'

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर पितामहने युधिष्ठिरको प्रश्न करनेकी आज्ञा दी । युधिष्ठिरने उनके पास जाकर चरणोंमें प्रणाम करके बड़े विनीत-भावसे धर्म और अध्यात्म-सम्बन्धी अनेकों प्रश्न किये । भीष्मपितामहने उन सब प्रश्नोंका पृथक्-पृथक् उत्तर दिया । उन सबका वर्णन महाभारतके शान्तिपर्वमें है । प्रत्येक जिज्ञासु स्त्री-पुरुषको उसका स्वाध्याय करना चाहिये । वे सब उपदेश यहाँ किसी प्रकार उद्धृत नहीं किये जा सकते । संक्षेपरूपसे ही उद्धृत किया जाय तो एक बड़ा-सा ग्रन्थ बन सकता है । यहाँ तो नाम-मात्रके लिये उनके कुछ थोड़े-से वचन उद्धृत कर दिये जाते हैं ।

बेटा ! मैं जगन्नियन्ता श्रीकृष्ण, धर्म और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके धर्म-सम्बन्धी कुछ बातें बताता हूँ । तुम सावधान होकर सुनो । राजाको चाहिये कि वह अपने उत्तम व्यवहारद्वारा देवताओं, दैवी सम्पत्तिवालों और ब्राह्मणोंको प्रसन्न रक्खे । इनकी प्रसन्नतासे धर्म प्रसन्न होता है और धर्मकी प्रसन्नतासे सब सुख-शान्ति मिलती है । जीवनमें पुरुषार्थकी बड़ी आवश्यकता है । बिना पौरुषके भाग्य कोई

फल नहीं देता । दैव और भाग्यका निश्चय तो फल मिलनेके पश्चात् होता है । पहले तो पौरुषका ही आश्रय लेना चाहिये । कार्य प्रारम्भ कर देनेपर कोई विघ्न आ जाय तो पूरी शक्तिके साथ उस विघ्नका सामना करना चाहिये और अपने कार्यको सिद्ध करनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये ।

राजाके लिये एक बात बहुत ही आवश्यक है, उसे सर्वदा सत्यका आश्रय लेना चाहिये । बिना सत्यके आश्रयसे उसका कोई विश्वास नहीं करता और परलोक भी मारा जाता है । उसके अन्तरङ्ग मित्र भी शङ्कित रहते हैं और शत्रु भी उसकी असत्यता घोषित करके लाभ उठाते हैं । जो राजा वीर, धीर, सदाचारी, दानी, शान्त, दयालु, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और हँसमुख होता है, उसकी लक्ष्मी कभी नष्ट नहीं होती । राजाको बहुत सरल अथवा बहुत उग्र नहीं होना चाहिये । सरलका कहीं रोब-दाब नहीं रहता और उग्रसे सब भयभीत रहते हैं; उसे असली बातका पता नहीं चलता । राजाका एकमात्र कर्तव्य है धर्मकी रक्षा; धर्मकी रक्षामें ही प्रजाकी रक्षा है । धर्मकी रक्षा इसीलिये है कि उससे प्रजाका हित होता है । प्रजाके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझना ही राजाका परम कर्तव्य है । राजाको चाहिये कि सर्वदा क्षमा न करे और सर्वदा दण्ड न दे; क्योंकि क्षमा करनेसे अपराधियोंकी संख्या बढ़ जाती है और सर्वदा दण्ड ही देनेसे प्रजा अप्रसन्न हो जाती है । राजाको चाहिये कि सर्वदा अपने आदमियोंकी परीक्षा किया करे, प्रत्यक्ष, अनुमान, सादृश्य और शास्त्रके द्वारा सबको परखता रहे । किसी भी व्यसनमें नहीं फँसना चाहिये । लोग राजाको किसी व्यसनमें

फँसाकर अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। महान्-से-महान् विपत्तिके अवसरोंपर भी राजाको घबराना नहीं चाहिये। नौकरोंके साथ विनोद नहीं करना चाहिये और अपनी सेनाको मजबूत रखना चाहिये। मुँहलगे नौकर मन लगाकर काम नहीं करते, आज्ञापालनमें टाल-मटोल कर देते हैं। गुप्त बात जाननेकी चेष्टा करते हैं। बड़ी-से-बड़ी चीज माँग बैठते हैं। इस तरहके अनेकों दोष उनमें आ जाते हैं। किनके साथ सन्धि करनी चाहिये और किनसे लड़ना चाहिये, इसका निर्णय अपनी बुद्धिसे सोचकर और बुद्धिमान् एवं विश्वासपात्र मन्त्रियोंसे सम्मति लेकर करना चाहिये। राज्यके सात अङ्ग हैं—स्वामी, मन्त्री, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना। इनका विरोधी चाहे कोई क्यों न हो, उसका नाश कर देना चाहिये। इसी प्रकार राजाओंके अनेक धर्म हैं। इनकी स्थिति लोगोंकी रक्षा करनेके लिये ही है।

ब्राह्मणोंको अपने वर्णोक्त धर्ममें अविचल भावसे स्थित रहना चाहिये। धनुष चलाना, शत्रुओंको मारना, खेती, रोजगार, पशुपालन और नौकरी ब्राह्मणोंका धर्म नहीं है। अध्ययन करना, अध्यापन करना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना—ब्राह्मणोंके ये छः कर्म कहे गये हैं। जितेन्द्रिय, याज्ञिक, सत्स्वभाव, दयालु, सहनशील, निर्लोभ, सरल, शान्तप्रकृति, अहिंसक और क्षमावान् ब्राह्मण ही वास्तवमें ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण एक स्थानमें रहकर, शरीरके द्वारा कोई क्रिया न करके भी सारे जगत्का कल्याण कर सकता है। उसका वेदमन्त्रोंका उच्चारण, हवन और शुभ संकल्प ही संसारके लिये बहुत उपयोगी है। क्षत्रिय ब्राह्मणका रक्षक है। वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंके भोजन-वस्त्र आदिकी व्यवस्था करने-

वाला है। ये तीनों वर्ण एक दूसरेके सहायक हैं। इन तीनोंके साथ शूद्रका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सच्ची बात तो यह है कि इनकी सहायतासे ही धर्माचरण हो सकता है, इसलिये क्रियाके अधिकारमें अन्तर होते हुए भी सब धर्मके समान फलके अधिकारी हैं।

चार आश्रम हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इनके धर्म अलग-अलग हैं। सबका पालन यथायोग्य होता है। ब्राह्मणके लिये चारों आश्रमोंका ही विधान है। वह गृहस्थ और वानप्रस्थमें आये बिना भी संन्यास ले सकता है। वह चाहे तो ब्रह्मचर्यके बाद गृहस्थाश्रम स्वीकार कर सकता है। संन्यास-आश्रममें सुख-दुःख-रहित, गृहविहीन, जो कुछ मिल जाय वही खाकर दिन बिता देनेवाला, जितेन्द्रिय, दान्त, सम, भोग-वासनाशून्य और निर्विकार रहना चाहिये। गृहस्थाश्रममें वेदोंको दुहराना, संतान उत्पन्न करना, संयमके साथ विषयभोग करना, निष्कपट रहना, परिमित भोजन करना और देवता-पितरके ऋणोंसे मुक्त रहना धर्म कहा गया है। गृहस्थको कृतज्ञ, देवप्रेमी, सत्यवादी, उपकारी, दानी और ऋतुकालमें अपनी स्त्रीके पास रहनेवाला होना चाहिये। वानप्रस्थके नियम बड़े ही कठोर हैं। वेदाध्ययनके समय ब्रह्मचर्य आश्रम स्वीकार करते हैं और अन्तःकरण अपने वशमें हो तो जीवन-भरके लिये लेते हैं। जो यज्ञोपवीत लेकर अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके देवताओंकी पूजा, मन्त्रजप, आचार्य-सेवा, गुरुको प्रणाम, वेद-वेदाङ्गका अध्ययन, वासनाओंका और अधर्मियोंके संसर्गका त्याग और प्राणायाम-ध्यान आदि करता है, यथार्थमें वही ब्रह्मचारी है।

सहिष्णुता बड़ी आवश्यक है। किसीके द्वारा अपमान भी हो

जाय तो सहसा आपेसे बाहर नहीं हो जाना चाहिये। नम्रभावसे ही रहना चाहिये। जो ऐसा व्यवहार करता है उसे कष्ट नहीं उठाना पड़ता। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है। एक बार समुद्रने अपनेमें मिलनेवाली नदियोंसे पूछा कि 'नदियो! तुम्हारे प्रवाहमें बड़े-बड़े वृक्ष जड़से उखड़े हुए आते हैं, परंतु आजतक किसीके प्रवाहमें बेंतका वृक्ष नहीं आया इसका कारण क्या है? क्या तुम लोग अपने तटपर लगे हुए बेंतोंको तुच्छ समझकर उन्हें लाती ही नहीं हो अथवा उनसे तुम्हारी मित्रता है?' इसके उत्तरमें श्रीगङ्गाजीने कहा कि 'स्वामिन्! दूसरे वृक्ष हमारे आनेपर अकड़े हुए खड़े रहते हैं, वे एक प्रकारसे हमारा विरोध करते हैं, परंतु बेंत ऐसा नहीं करता। वह हमलोगोंके वेगको देखकर झुक जाता है और प्रवाहका वेग निकल जानेपर ज्यों-का-त्यों खड़ा हो जाता है। वह अवसर जाननेवाला, सहिष्णु, विनयी और हमारे अनुकूल है, इसीसे हम उसे नहीं उखाड़तीं।' वायुके वेगमें भी यही बात है। जो वृक्ष-लता, झाड़-झंखाड़ वायुके सामने नतमस्तक हो जाते हैं, वे नहीं उखड़ते। नम्र हो जाना बुद्धिमानोंका लक्षण है।

मनुष्यको सर्वदा चरित्रवान् होना चाहिये। प्रह्लादने अपने चरित्रके बलसे इन्द्रका राज्य प्राप्त कर लिया। इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई, वे अपने गुरुके पास गये। उन्होंने राज्यप्राप्तिका उपाय पूछा, तब देवगुरु बृहस्पतिने कहा कि ज्ञान प्राप्त करो। इन्द्रने जब इससे भी उत्तम उपाय पूछा, तब उन्होंने शुक्राचार्यके पास भेज दिया। शुक्राचार्यने प्रह्लादके पास भेजा। इन्द्र वेष बदलकर प्रह्लादके पास पहुँचे और उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे ऐश्वर्य-प्राप्तिका

उसी समय बहेलियेने एक पेड़ देखा, बड़ा सुन्दर पेड़ था। मानो ब्रह्माने परोपकार करनेके लिये ही उसकी सृष्टि की हो। आकाश निर्मल हो गया, नक्षत्र दिखायी देने लगे। बहेलियेने आकर उसी पेड़की शरण ली। वह पत्ते बिछाकर एक पत्थरपर सिर रखकर लेट गया। वह वृक्ष कबूतरीका निवासस्थान था। उसका पति कबूतर उसीपर रहता था। समयपर कबूतरीके न आनेसे वह बड़ा विलाप कर रहा था। अपने पतिका विलाप सुनकर कबूतरीको बड़ा दुःख हुआ। साथ ही अपने सौभाग्यका गर्व भी हुआ। वह सोचने लगी, मेरे पति मुझसे इतना प्रसन्न रहते हैं तो इससे बढ़कर मेरे लिये और प्रसन्नताकी बात क्या होगी? उसने पिंजरेके अंदरसे ही अपने पतिको पुकारकर कहा—'स्वामी! इस समय तुम्हारे हितकी बात यही है कि इस भूखे-प्यासे और जाड़ेसे ठिठुरते हुए बहेलियेकी रक्षा और सत्कार करो। यह तुम्हारे घर आया है न, हम पक्षी होनेके कारण निर्बल अवश्य हैं, परंतु तुम्हारे-जैसे आत्मतत्त्वके ज्ञाताको शरणागत प्राणीकी रक्षा करनी ही चाहिये। मेरे बदलेमें तुम्हें दूसरी स्त्री मिल सकती है, परंतु इस प्रकार अतिथि-सत्कारका अवसर प्राप्त होगा या नहीं इसमें संदेह है।'

अपनी स्त्रीके वचन सुनकर कबूतरको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह आदरके साथ बहेलियेसे कहने लगा—'भाई साहब! आप अपने ही घरमें हैं, कोई चिन्ता न करें। आप मेरे अतिथि हैं, आपकी सेवा मेरा कर्तव्य है।' वृक्ष अपने काटनेवालेको भी छाया देता है। घर आनेपर अपने शत्रुका भी सत्कार करना चाहिये। आप इस समय क्या चाहते हैं। मैं यथाशक्ति आपकी इच्छा पूरी करूँगा।' बहेलिये-

ने कहा—'इस समय तो मैं जाड़ेसे ठिठुर रहा हूँ, ठंडसे बचनेका कोई उपाय करो।' कबूतरने सूखे पत्ते इकट्ठे किये। लुहारके यहाँसे आग लाकर जला दिया। बहेलिया आग तापने लगा। उसका जाड़ा छूट गया। अब वह कबूतरकी ओर देखकर बोला कि 'मुझे भूख लगी है, कुछ खानेको चाहिये।' कबूतरने कहा—'मेरे पास खानेकी कोई वस्तु नहीं है। मैं तो रोज ले आता हूँ और इसी प्रकार जीवन-निर्वाह होता है।' फिर कुछ सोचकर उसने कहा—'अच्छा क्षणभर ठहर जाइये, मैं आपके खानेका प्रबन्ध करता हूँ।' उसने फिर आग जलायी और तीन बार उसकी प्रदक्षिणा करके यह कहते हुए आगमें कूद पड़ा कि 'महाशय! आप मेरी सेवा स्वीकार करें।' कबूतरकी यह दशा देखकर बहेलियेका क्रूर हृदय पसीज गया, वह अपनी करतूतकी निन्दा करता हुआ रोने लगा। उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने अपनी लाठी, सलाका, पिंजरा आदि फेंक दिया, कबूतरीको छोड़ दिया और अनशन करके शरीरको सुखा देनेका निश्चय करके वहाँसे चल पड़ा।

कबूतरी पिंजरेसे बाहर निकलकर अपने पतिके वियोगमें विलाप करने लगी। अपने पतिके साथ उसका सच्चा प्रेम-सम्बन्ध था। उसने अपना जीवन सार्थक करनेका निश्चय कर लिया। वह भी आगमें कूद पड़ी। दोनों ही विमानपर बैठकर स्वर्ग गये। महात्माओंने उनकी स्तुति की, देवताओंने सम्मान किया और वे सुखसे रहने लगे। व्याधने भी उन्हें स्वर्ग जाते समय देखा। वनमें दावाग्नि लग गयी और उसमें जलकर वह भी स्वर्ग गया। अतिथि-सत्कार और [illegible] रक्षाके फलस्वरूप न केवल सत्कार [illegible]

गति प्राप्त होती है बल्कि उनके द्वारा जिनका सत्कार और रक्षा होती है और जो उन्हें उत्तम गति प्राप्त करते हुए देखते हैं उनका भी भला ही होता है। अतिथि-सत्कार और शरणागतरक्षा मनुष्यका सर्वोत्तम धर्म है।

धर्मका स्वरूप बड़ा ही सूक्ष्म है। वह शारीरिक क्रियाओंसे प्रारम्भ होकर अध्यात्मके सूक्ष्मतम भागतक पहुँचता है। धर्मसे अपना जीवन सुधरता है, जाति और समाजका कल्याण होता है। संसारके समस्त जीवोंको शान्ति मिलती है, सब लोकोंमें पवित्रताका संचार होता है। धर्म शरीरको शुद्ध कर देता है, इन्द्रियोंमें संयम ला देता है, मनका विक्षेप नष्ट कर देता है, बुद्धिको विशुद्ध बना देता है। आत्माको अपने निश्चल स्वरूपमें स्थित कर देता है। और तो क्या कहें, धर्म परमात्माका स्वरूप है। धर्मसे बढ़कर और कुछ नहीं है। यह सारा जगत् धर्मसे ही पैदा होता है, धर्मसे स्थित है और धर्ममें ही समा जाता है।

सब प्राणियोंका शरीर पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न हुआ है। सृष्टिकर्त्ता परमात्माने ही पञ्चभूतोंको प्राणियोंके शरीरमें स्थापित कर दिया है। शब्द, श्रोत्र और सम्पूर्ण छिद्र आकाशके गुण हैं। स्पर्श, चेष्टा और त्वचा—ये तीन वायुके गुण हैं। तेजके भी तीन गुण हैं—रूप, नेत्र और परिपाक। जलके रस, क्लेद और जिह्वा। पृथ्वीके गन्ध, नासिका और शरीर। इन पञ्चमहाभूतोंकी सूक्ष्म तन्मात्रासे ही अन्तःकरण बना हुआ है। इन्हींके द्वारा जीवात्माको विषयोंका ज्ञान होता है, इन्द्रियाँ विषयको ग्रहण करती हैं, मन संकल्प और विकल्प करता है, बुद्धि ठीक-ठीक निर्णय करती है और जीवात्मा साक्षीके समान

रह सब देखा करता है। विशुद्ध बुद्धिसे जगत्‌की उत्पत्ति और
लयका ज्ञान हो जानेपर शान्ति मिल जाती है।

सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण बुद्धिको अपने वशमें रखते हैं,
बुद्धि मन और इन्द्रियोंको वशमें रखती है। बुद्धि न हो तो कोई
काम नहीं हो सकता है। रजोगुणसे युक्त बुद्धि विषयोंका ज्ञान
कराती है। सत्त्वगुणसे युक्त बुद्धि परमात्माका ज्ञान कराती है।
तमोगुणसे युक्त बुद्धि मोह उत्पन्न करती है। सत्त्वगुणसे शान्ति और
प्रेम, रजोगुणसे काम और क्रोध तथा तमोगुणसे भय-विषाद होते
हैं। सत्त्वगुणसे सुख, रजोगुणसे दुःख और तमोगुणसे मोह होता है।
सत्त्वगुणसे हर्ष, प्रेम, आनन्द और शान्तिके भाव उत्पन्न होते हैं।
रजोगुणसे असंतोष, संताप, शोक, लोभ, असहिष्णुता और तमोगुणसे
अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य होते हैं। शास्त्रीय क्रियाओं
और अपने कर्तव्य-पालनका यह अर्थ है कि तमोगुण और रजोगुणको
दबाकर सत्त्वगुणकी प्रधानता स्थापित की जाय। विभिन्न प्रकारकी
शारीरिक और मानसिक साधनाओंका यही लक्ष्य है। धर्मकी विभिन्न
व्याख्या और विभिन्न रूप केवल इसीलिये हैं।

यह तो हुआ बुद्धिका विचार। अब आत्माकी बात सुनो। बुद्धिसे
अहंकार आदि गुण उत्पन्न होते हैं, परंतु आत्मा इन सबसे अलग
रहता है। जैसे गूलरका फल और उसके अंदर रहनेवाले कीड़े एवं
पानी और पानीके अंदर रहनेवाली मछली एक नहीं हैं, एकमें रहनेपर
भी अलग-अलग हैं, वैसे ही बुद्धि और आत्मा एक साथ रहनेपर
भी अलग-अलग हैं। अहंकार आदि गुण आत्माको नहीं जानते, परंतु
आत्मा इन सबको जानता है। आत्मा बुद्धि और बुद्धिके समस्त आचरणोंको

और जो कुछ उनसे परे है, उन्हें भी जानता है। मनुष्य आत्मनिष्ठ और ध्याननिरत होकर बुद्धि और बुद्धिसम्बन्धी समस्त विषयोंसे ऊपर उठ जाता है जो सर्वदा आत्मस्वरूपसे ही स्थित है वही जीवन्मुक्त है। जो पुरुष संसारमें रहकर भी हंसकी भाँति संसारके धर्मोंसे निर्लिप्त रहता है, वह समस्त भयोंके पार पहुँच जाता है। दुःख, शोक आदि त्रिगुणमें ही हैं। आत्मा दुःखके और त्रिगुणके परे है। धर्म, अर्थ और काम— ये तीनों पुरुषार्थ वास्तवमें पुरुषार्थ नहीं हैं, सच्चा पुरुषार्थ तो मोक्ष ही है। जो इनकी आसक्ति छोड़ देता है वही मोक्षमें प्रतिष्ठित होता है। आत्मदर्शनके लिये इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाना ही होगा। इसके लिये और दूसरा कोई उपाय नहीं है। आत्मज्ञानसे बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नहीं है। जिसने अपने आत्माको जान लिया वह कृतार्थ हो गया। ज्ञानी मनुष्य कभी किसीसे भयभीत नहीं होते। मुक्ति एक है, सबकी मुक्ति एक-सी है। जो सगुण हैं उनके गुणोंकी तुलना की जा सकती है। जो निर्गुण हैं उनके गुणोंकी तुलना किसी प्रकार नहीं की जा सकती। कर्म केवल शारीरिक है। मनके संयोगसे वह पाप या पुण्य बन जाता है। उपासना केवल मानसिक है, चाहे जडकी उपासना कीजिये चाहे चेतनकी। जडकी उपासना बाँधेगी, चेतनकी उपासना मुक्त करेगी। ज्ञान बौद्धिक है, चाहे जडका ज्ञान प्राप्त करके भटकिये, चाहे आत्माका ज्ञान प्राप्त करके सदाके लिये शान्त हो जाइये। कर्मकी अपेक्षा उपासना आन्तरिक है, उपासनाकी अपेक्षा ज्ञान आन्तरिक है और इन तीनोंकी अपेक्षा इन तीनोंसे परे रहना अच्छा है।

स्वरूपस्थितिके लिये ध्यानकी बड़ी आवश्यकता है। उसी

धर्मकी प्रशंसा है, जिसके करनेमें ध्यानमें बाधा न पड़े। मनकी वही स्थिति वाञ्छनीय है जिसमें राग-द्वेषके कारण मन किसीकी ओर दौड़ता और किसीसे भागता न हो। ध्यानके लिये स्थान ऐसा चाहिये, जहाँ स्त्री आदिका संसर्ग तथा ध्यानविरोधी वस्तुएँ न हों। शरीर इतना हलका हो कि उसको स्थिर रखनेके लिये खूनको दौड़ाना न पड़े। अपने सत्कर्मसे और शरीरकी स्वाभाविक सुगन्धिसे उस स्थानके देवता इतने प्रसन्न हों कि ध्यानमें किसी प्रकारका विघ्न न डालें। सच्चे हृदयसे आर्तभावसे ध्यानके लिये परमात्मासे ऐसी प्रार्थना कर ली जाय कि 'प्रभो! मेरी वृत्तियोंको अपनेमें लगा लो।' स्थिर आसनसे बैठ जाओ और सोचो कि परमात्मा मेरे चारों ओर स्थित हैं, वह मेरे शरीरको स्थिर कर रहा है, मेरी इन्द्रियोंको अन्तर्मुख कर रहा है, मेरे मनको अपनेमें लगा रहा है। काम-क्रोधको जला डालो। सर्दी-गरमीकी परवा मत करो। संसारकी किसी वस्तुकी चिन्ता मत करो। प्रलय हो रहा है तो हो जाने दो। गला काटा जा रहा है तो कट जाने दो, तुम ध्यान करते रहो। उस समय अपने आपमें इस प्रकार स्थित हो जाओ कि कानोंसे शब्द, त्वचासे स्पर्श, आँखोंसे रूप, जीभसे रस और नाकसे गन्धका ज्ञान न हो। जिन विषयोंके कारण मन इन्द्रियोंमें होकर बाहर जाता है, उन विषयों और इन्द्रियोंको ही भूल जाओ। मनको केवल अनन्त चेतनमें, अनन्त आनन्दमें डुबा दो। डूब जाओ और इस तरह डूब जाओ कि फिर निकलनेका संकल्प ही न रहे। जो लोग घड़ी-दो-घड़ी बाद ध्यान तोड़कर दूसरा काम करनेका संकल्प रखते हैं, उनको सच्चा ध्यान लग ही नहीं सकता। ध्यान मनकी साधना है। मन लगानेकी चेष्टा करनेपर भी बिजलीके समान

और जो कुछ उनसे परे हैं, उन्हें भी जानता है । मनुष्य आत्मनिष्ठ औ
ध्याननिरत होकर बुद्धि और बुद्धिसम्बन्धी समस्त विषयोंसे ऊपर उठ जाता
जो सर्वदा आत्मस्वरूपसे ही स्थित है वही जीवन्मुक्त है । जो पुरु
संसारमें रहकर भी हंसकी भाँति संसारके धर्मोंसे निर्लिप्त रहता है
वह समस्त भयोंके पार पहुँच जाता है । दु:ख, शोक आदि त्रिगुण
ही हैं । आत्मा दु:खके और त्रिगुणके परे है । धर्म, अर्थ और काम—
ये तीनों पुरुषार्थ वास्तवमें पुरुषार्थ नहीं हैं, सच्चा पुरुषार्थ तो मो
ही है । जो इनकी आसक्ति छोड़ देता है वही मोक्षमें प्रतिष्ठित होत
है । आत्मदर्शनके लिये इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाना ही होगा । इसं
लिये और दूसरा कोई उपाय नहीं है । आत्मज्ञानसे बढ़कर दूस
कोई ज्ञान नहीं है । जिसने अपने आत्माको जान लिया वह कृता
हो गया । ज्ञानी मनुष्य कभी किसीसे भयभीत नहीं होते । मुि
एक है, सबकी मुक्ति एक-सी है । जो सगुण हैं उनके गुणोंक
तुलना की जा सकती है। जो निर्गुण हैं उनके गुणोंकी तुलना किस
प्रकार नहीं की जा सकती । कर्म केवल शारीरिक है। मनके संयोगर
वह पाप या पुण्य बन जाता है । उपासना केवल मानसिक है, चाह
जडकी उपासना कीजिये चाहे चेतनकी । जडकी उपासना बाँधेगी
चेतनकी उपासना मुक्त करेगी । ज्ञान बौद्धिक है, चाहे जडका ज्ञान
प्राप्त करके भटकिये, चाहे आत्माका ज्ञान प्राप्त करके सदाके लिये
शान्त हो जाइये । कर्मकी अपेक्षा उपासना आन्तरिक है, उपासनाकी
अपेक्षा ज्ञान आन्तरिक है और इन तीनोंकी अपेक्षा इन तीनोंसे परे
रहना अच्छा है ।

स्वरूपस्थितिके लिये ध्यानकी बड़ी आवश्यकता है । उसी

कर्मकी प्रशंसा है, जिसके करनेसे ध्यानमें बाधा न पड़े। मनकी वही स्थिति वाञ्छनीय है जिसमें राग-द्वेषके कारण मन किसीकी ओर दौड़ता और किसीसे भागता न हो। ध्यानके लिये स्थान ऐसा चाहिये, जहाँ स्त्री आदिका संसर्ग तथा ध्यानविरोधी वस्तुएँ न हों। शरीर इतना हल्का हो कि उसको स्थिर रखनेके लिये खूनको दौड़ाना न पड़े। अपने सत्कर्मसे और शरीरकी स्वाभाविक सुगन्धिसे उस स्थानके देवता इतने प्रसन्न हों कि ध्यानमें किसी प्रकारका विघ्न न डालें। सच्चे हृदयसे आर्तभावसे ध्यानके लिये परमात्मासे ऐसी प्रार्थना कर ली जाय कि 'प्रभो! मेरी वृत्तियोंको अपनेमें लगा लो।' स्थिर आसनसे बैठ जाओ और सोचो कि परमात्मा मेरे चारों ओर स्थित हैं, वह मेरे शरीरको स्थिर कर रहा है, मेरी इन्द्रियोंको अन्तर्मुख कर रहा है, मेरे मनको अपनेमें लगा रहा है। काम-क्रोधको जला डालो। सर्दी-गरमीकी परवा मत करो। संसारकी किसी वस्तुकी चिन्ता मत करो। प्रलय हो रहा है तो हो जाने दो। गला काटा जा रहा है तो कट जाने दो, तुम ध्यान करते रहो। उस समय अपने आपमें इस प्रकार स्थित हो जाओ कि कानोंसे शब्द, त्वचासे स्पर्श, आँखोंसे रूप, जीभसे रस और नाकसे गन्धका ज्ञान न हो। जिन विषयोंके कारण मन इन्द्रियोंमें होकर बाहर जाता है, उन विषयों और इन्द्रियोंको ही भूल जाओ। मनको केवल अनन्त चेतनमें, अनन्त आनन्दमें डुबा दो। डूब जाओ और इस तरह डूब जाओ कि फिर निकलनेका संकल्प ही न रहे। जो लोग घड़ी-दो-घड़ी बाद ध्यान तोड़कर दूसरा काम करनेका संकल्प रखते हैं, उनको सच्चा ध्यान लग ही नहीं सकता। ध्यान मनकी साधना है। मन लगानेकी चेष्टा करनेपर भी बिजलीके स-

चमककर अन्धकारमें विलीन हो जाया करता है। मनकी यह स्थिति वाञ्छनीय नहीं है। जिससे प्रेम होता है उसका रूप सामने आ जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिये। समस्त सांसारिक नाम और रूपोंको भूलकर तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणसे ऊपर उठकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाना चाहिये।

ब्रह्मस्वरूपमें स्थित जीवन्मुक्त महापुरुष किसी बातका आग्रह नहीं करता, किसीका विरोध नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता, किसी वस्तुकी कामना नहीं करता। वह सब प्राणियोंसे समान बर्ताव करता है। वह सबको समत्वकी तराजूपर तौलता है। दूसरेके कामोंकी न प्रशंसा करता है और न निन्दा। वह आकाशकी भाँति सबमें समभावसे स्थित रहता है। न वह किसीसे डरता और न तो कोई उससे डरता है। न वह इच्छा करता है, न वाञ्छा करता है। किसी भी प्राणीके प्रति 'यह पापी है' इस प्रकारकी भावना उसके मनमें नहीं आती। वाणीसे वह किसीको पापी नहीं कहता। शरीरसे वह किसीके प्रति घृणाका व्यवहार नहीं करता। जिससे भूत, भविष्य और वर्तमानमें कभी किसी प्रकार, किसीको पीड़ा नहीं पहुँचती, वही ब्रह्मस्वरूपमें स्थित है। जो पूजा करनेवाले और मारनेवाले दोनोंके प्रति प्रिय अथवा अप्रिय बुद्धि नहीं रखता, वास्तवमें वही महात्मा है।

स्थूल शरीरके समस्त कर्मोंका परित्याग करके केवल मनसे ध्यान करना और निर्गुण स्वरूपमें स्थित होकर जीवन्मुक्त हो जाना सबके लिये सुगम नहीं है। जिनकी शरीर और शरीरके कर्मोंसे आसक्ति है वे तो अपने अन्तःकरणको भूले हुए हैं, केवल शरीरमें

ही स्थित हैं। वे भला ध्यान कैसे कर सकते हैं। उनके लिये पहले ऐसा उपाय होना चाहिये कि वे शरीरकी क्रियाके साथ-साथ अपने मनको भी देख लिया करें अर्थात् ऐसी क्रिया करें जो शरीरसे सम्बद्ध होनेपर भी मनको ओर अधिक ले जाय। ऐसा कर्म जप है, जिसमें जीभसे मन्त्रका उच्चारण होता है, हाथमें माला घूमती है, पहले मनमें सांसारिक वस्तुओंका चिन्तन होनेपर भी अन्तमें अन्तःकरणकी ही स्मृति रहने लगती है। इससे अन्तःकरण जाग्रत् हो जाता है और परमात्माके ध्यानमें लगने लगता है। जप होना चाहिये, चाहे गायत्री हो, चाहे प्रणवका हो, चाहे भगवान्के और किसी नामका हो। अन्तर्मुख होना ही जपकी सफलताका लक्षण है। जो जप करके भी अन्तर्मुख नहीं होता, उसके मनमें आध्यात्मिक जिज्ञासाका अभाव है, अथवा श्रद्धाका अभाव है ऐसा समझना चाहिये।

युधिष्ठिर! तुमसे क्या बताऊँ, तुम तो सब जानते ही हो। लोक-कल्याणके लिये मुझसे प्रश्न करते हो तो करो और मैं उत्तर भी दूँ। असली बात यह है कि संसारमें जितने प्रकारके धर्म हैं, वे सब श्रीकृष्णसे ही निकले हैं। श्रीकृष्ण ही सब धर्मोंके उत्पत्ति-स्थान हैं। जीवन्मुक्ति और स्वरूपस्थिति श्रीकृष्णकी कृपाकी प्रतीक्षा करती हैं। श्रीकृष्ण ही निर्गुण ब्रह्म हैं; श्रीकृष्ण ही सगुण ब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण ही साकार हैं, श्रीकृष्ण ही निराकार हैं। श्रीकृष्ण प्रकृति हैं और श्रीकृष्ण ही विकृति हैं। श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। श्रीकृष्ण माता-पिता, भाई-बन्धु, सुहृद्-सखा, पति-पुत्र—सब कुछ हैं। वे पुरुष हैं, वे पुरुषोत्तम हैं। वे जीव हैं, वे ब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण ही ज्ञाता हैं, श्रीकृष्ण ही ज्ञेय ... ज्ञान

चमककर अन्धकारमें विलीन हो जाया करता है। मनकी यह स्थिति वाञ्छनीय नहीं है। जिससे प्रेम होता है उसका रूप सामने आ जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिये। समस्त सांसारिक नाम और रूपोंको भूलकर तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणसे ऊपर उठकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाना चाहिये।

ब्रह्मस्वरूपमें स्थित जीवन्मुक्त महापुरुष किसी बातका आग्रह नहीं करता, किसीका विरोध नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता, किसी वस्तुकी कामना नहीं करता। वह सब प्राणियोंसे समान बर्ताव करता है। वह सबको समत्वकी तराजूपर तौलता है। दूसरेके कामोंकी न प्रशंसा करता है और न निन्दा। वह आकाशकी भाँति सबमें समभावसे स्थित रहता है। न वह किसीसे डरता और न तो कोई उससे डरता है। न वह इच्छा करता है, न वाञ्छा करता है। किसी भी प्राणीके प्रति 'यह पापी है' इस प्रकारकी भावना उसके मनमें नहीं आती। वाणीसे वह किसीको पापी नहीं कहता। शरीरसे वह किसीके प्रति घृणाका व्यवहार नहीं करता। जिससे भूत, भविष्य और वर्तमानमें कभी किसी प्रकार, किसीको पीड़ा नहीं पहुँचती, वही ब्रह्मस्वरूपमें स्थित है। जो पूजा करनेवाले और मारनेवाले दोनोंके प्रति प्रिय अथवा अप्रिय बुद्धि नहीं रखता, वास्तवमें वही महात्मा है।

स्थूल शरीरके समस्त कर्मोंका परित्याग करके केवल मनसे ध्यान करना और निर्गुण स्वरूपमें स्थित होकर जीवन्मुक्त हो जाना सबके लिये सुगम नहीं है। जिनकी शरीर और शरीरके कर्मोंसे आसक्ति है वे तो अपने अन्तःकरणको भूले हुए हैं, केवल शरीरमें

ही स्थित हैं। वे सहज ध्यान कैसे कर सकते हैं। उनके लिये पहले ऐसा उपाय होना चाहिये कि वे शरीरकी क्रियाके साथ-साथ अपने मनको भी देख लिया करें अर्थात् ऐसी क्रिया करें जो शरीरसे सम्बद्ध होनेपर भी मनको और अधिक ले जाय। ऐसा कर्म जप है, जिसमें जीभसे मन्त्रका उच्चारण होता है, हाथमें माला घूमती है, पहले मनसे सांसारिक वस्तुओंका चिन्तन होनेपर भी अन्तमें अन्तःकरणकी ही स्मृति रहने लगती है। इससे अन्त.करण जाग्रत् हो जाता है और परमात्माके ध्यानमें लगने लगता है। जप होना चाहिये, चाहे गायत्री हो, चाहे प्रणवका हो, चाहे भगवान्के और किसी नामका हो। अन्तर्मुख होना ही जपकी सफलताका लक्षण है। जो जप करके भी अन्तर्मुख नहीं होता, उसके मनमें आध्यात्मिक जिज्ञासाका अभाव है, अथवा श्रद्धाका अभाव है ऐसा समझना चाहिये।

युधिष्ठिर! तुमसे क्या बताऊँ, तुम तो सब जानते ही हो। लोक-कल्याणके लिये मुझसे प्रश्न करते हो तो करो और मैं उत्तर भी दूँ। असली बात यह है कि संसारमें जितने प्रकारके धर्म हैं, वे सब श्रीकृष्णसे ही निकले हैं। श्रीकृष्ण ही सब धर्मोंके उत्पत्ति-स्थान हैं। जीवन्मुक्ति और स्वरूपस्थिति श्रीकृष्णकी कृपाकी प्रतीक्षा करती हैं। श्रीकृष्ण ही निर्गुण ब्रह्म हैं; श्रीकृष्ण ही सगुण ब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण ही साकार हैं, श्रीकृष्ण ही निराकार हैं। श्रीकृष्ण प्रकृति हैं और श्रीकृष्ण ही विकृति हैं। श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। श्रीकृष्ण माता-पिता, भाई-बन्धु, सुहृद्-सखा, पति-पुत्र—सब कुछ हैं। वे पुरुष हैं, वे पुरुषोत्तम हैं। वे जीव हैं, वे ब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण ही ज्ञाता हैं, श्रीकृष्ण ही ज्ञेय हैं। श्रीकृष्ण ही ज्ञान

सूर्य उत्तरायण हुए, भीष्मपितामहके शरीरत्यागका दिन आया। हस्तिनापुरसे चलकर धृतराष्ट्र, पाण्डव, भगवान् श्रीकृष्ण सब उपस्थित हुए । भीष्मपितामहके पास महर्षि वेदव्यास, देवर्षि नारद और असित पहलेसे ही बैठे हुए थे । युधिष्ठिरने सबको प्रणाम किया। उन्होंने भीष्मपितामहसे अपने लिये आज्ञा माँगी। पितामहने युधिष्ठिर-का हाथ पकड़कर गम्भीर ध्वनिसे कहा—'युधिष्ठिर ! सूर्य उत्तरायण हो गये हैं। मन्त्रियों, मित्रों और गुरुजनोंके साथ तुम्हें आया हुआ देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । इन तीखे बाणोंपर पड़े-पड़े आज ५८ दिन बीत गये । माघ महीनेका शुक्लपक्ष है, अब मुझे शरीर त्याग करना चाहिये ।' इसके बाद पितामहने धृतराष्ट्रको बुलाकर कहा—'महाराज ! तुमने धर्म और अर्थके तत्त्वको समझा है । विद्वान् ब्राह्मणोंकी सेवा की है, शास्त्रोंका स्वाध्याय किया है । शोक करनेका कहीं भी कोई कारण नहीं है। लोग अपने अज्ञानसे ही सुखी-दुखी होते हैं। होनेवाली बात तो होती ही है, यह हो यह न हो ऐसा पूर्व संकल्प करके अज्ञानी लोग शोक और मोहसे संतप्त होते हैं । पाण्डव तुम्हारे पुत्र हैं, वे तुम्हारी आज्ञाका पालन करेंगे । तुम्हारे सौ पुत्र दुरात्मा थे, तुम्हारी आज्ञा नहीं मानते थे । भगवान्‌से विमुख थे, उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये ।'

भीष्मपितामहने श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो ! तुम सम्पूर्ण देवताओंके एकमात्र अधिपति पुरुषोत्तम हो, मैं सच्चे हृदयसे तुम्हें नमस्कार करता हूँ । एकमात्र तुम्हीं मेरे रक्षक हो। मैंने तुम्हारे स्वरूप-को पहचाना है, अब मुझे आज्ञा दो कि मैं शरीर-त्याग करूँ ।'

भगवान् श्रीकृष्णने आज्ञा दे दी। भीष्मपितामहने अपनी इन्द्रियों, मनोवृत्तियों और बुद्धिको समेटकर भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति प्रारम्भ की। उस समय अनेकों ऋषि-महर्षि उन्हें घेरकर बैठे हुए थे।

उन्होंने कहा—'श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम! आप परम ब्रह्म हैं। बड़े-बड़े देवता और ऋषि आपके तत्त्वको नहीं जानते। यह सारा संसार आपमें स्थित है। सारे वेद और उपनिषद् आपकी महिमाका बखान करते हैं, आप बड़े ही भक्तवत्सल हैं। आपका नाम लेकर लोग संसारसे त्राण पाते हैं। वेदोंकी रक्षाके लिये ही आप अवतीर्ण हुए हैं। वास्तविक ज्ञान होनेपर मनुष्य अपने आत्माके रूपमें आपको पहचान लेता है। आप ही उपासना करने योग्य हैं, आप ही शरण लेने योग्य हैं, आप भक्तवाञ्छा-कल्पतरु हैं, आप संसारकी निधि हैं, आप सत्-असत्से परे एकाक्षर ब्रह्म और परम सत्य हैं। आप अनादि और अनन्त हैं। सब प्राणी आपमें ही रम रहे हैं, न जाननेके कारण दुखी-सुखी होते रहते हैं। आपको जान लेनेपर मृत्युका भय नहीं रहता। आपने ही पृथ्वीको धारण कर रक्खा है। आप ही शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं। आप सत्यस्वरूप हैं, आप धर्मस्वरूप हैं, आप कामस्वरूप हैं, आप क्षेत्रस्वरूप हैं। आप ही सांख्ययोग और मोक्षस्वरूप हैं। प्रभो! मैं आपके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करता हूँ।

'भगवन्! आप ही कार्य हैं और आप ही कारण। आप ही घोर हैं और आप ही अघोर। आप ही काल, दिक् और वस्तुके रूपमें प्रकट हो रहे हैं। आप ही लोक हैं और आप ही अलोक।

सूर्य उत्तरायण हुए, भीष्मपितामहके शरीरत्यागका दिन आया। हस्तिनापुरसे चलकर धृतराष्ट्र, पाण्डव, भगवान् श्रीकृष्ण सब उपस्थित हुए। भीष्मपितामहके पास महर्षि वेदव्यास, देवर्षि नारद और असित पहलेसे ही बैठे हुए थे। युधिष्ठिरने सबको प्रणाम किया। उन्होंने भीष्मपितामहसे अपने लिये आज्ञा माँगी। पितामहने युधिष्ठिर-का हाथ पकड़कर गम्भीर ध्वनिसे कहा--'युधिष्ठिर! सूर्य उत्तरायण हो गये हैं। मन्त्रियों, मित्रों और गुरुजनोंके साथ तुम्हें आया हुआ देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इन तीखे बाणोंपर पड़े-पड़े आज ५८ दिन बीत गये। माघ महीनेका शुक्लपक्ष है, अब मुझे शरीर त्याग करना चाहिये।' इसके बाद पितामहने धृतराष्ट्रको बुलाकर कहा—'महाराज! तुमने धर्म और अर्थके तत्त्वको समझा है। विद्वान् ब्राह्मणोंकी सेवा की है, शास्त्रोंका स्वाध्याय किया है। शोक करनेका कहीं भी कोई कारण नहीं है। लोग अपने अज्ञानसे ही सुखी-दुखी होते हैं। होनेवाली बात तो होती ही है, यह हो यह न हो ऐसा पूर्व संकल्प करके अज्ञानी लोग शोक और मोहसे संतप्त होते हैं। पाण्डव तुम्हारे पुत्र हैं, वे तुम्हारी आज्ञाका पालन करेंगे। तुम्हारे सौ पुत्र दुरात्मा थे, तुम्हारी आज्ञा नहीं मानते थे। भगवान्से विमुख थे, उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये।'

भीष्मपितामहने श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो! तुम सम्पूर्ण देवताओंके एकमात्र अधिपति पुरुषोत्तम हो, मैं सच्चे हृदयसे तुम्हें नमस्कार करता हूँ। एकमात्र तुम्हीं मेरे रक्षक हो। मैंने तुम्हारे स्वरूप-को पहचाना है, अब मुझे आज्ञा दो कि मैं शरीर-त्याग करूँ।'

भगवान् श्रीकृष्णने आज्ञा दे दी। भीष्मपितामहने अपनी इन्द्रियों, मनोवृत्तियों और बुद्धिको समेटकर भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति प्रारम्भ की। उस समय अनेकों ऋषि-महर्षि उन्हें घेरकर बैठे हुए थे।

उन्होंने कहा—'श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम! आप परम ब्रह्म हैं। बड़े-बड़े देवता और ऋषि आपके तत्त्वको नहीं जानते। यह सारा संसार आपमें स्थित है। सारे वेद और उपनिषद् आपकी महिमाका बखान करते हैं, आप बड़े ही भक्तवत्सल हैं। आपका नाम लेकर लोग संसारसे त्राण पाते हैं। वेदोंकी रक्षाके लिये ही आप अवतीर्ण हुए हैं। वास्तविक ज्ञान होनेपर मनुष्य अपने आत्माके रूपमें आपको पहचान लेता है। आप ही उपासना करने योग्य हैं, आप ही शरण लेने योग्य हैं, आप भक्तवाञ्छा-कल्पतरु हैं, आप संसारकी निधि हैं, आप सत्-असत्से परे एकाक्षर ब्रह्म और परम सत्य हैं। आप अनादि और अनन्त हैं। सब प्राणी आपमें ही रम रहे हैं, न जाननेके कारण दुखी-सुखी होते रहते हैं। आपको जान लेनेपर मृत्युका भय नहीं रहता। आपने ही पृथ्वीको धारण कर रक्खा है। आप ही शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं। आप सत्यस्वरूप हैं, आप धर्मस्वरूप हैं, आप कामस्वरूप हैं, आप क्षेत्रस्वरूप हैं। आप ही सांख्ययोग और मोक्षस्वरूप हैं। प्रभो! मैं आपके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करता हूँ।

'भगवन्! आप ही कार्य हैं और आप ही कारण। आप ही घोर हैं और आप ही अघोर। आप ही काल, दिक् और वस्तुके रूपमें प्रकट हो रहे हैं। आप ही लोक हैं और आप ही

अद्भुत खिलाड़ी हैं, आप छिप गये । वे विरहसे निहाल हो गयीं । और क्या करतीं, आपकी ही लीलाका अनुकरण करने लगीं, अपनेको भूल गयीं, तन्मय हो गयीं । आप उनकी तन्मयतामें, उनके विरह-संगीतमें और उनकी प्रेम-पीडामें प्रकट हुए । आप इसी प्रकार प्रकट होते हैं, इसीसे तो मैं आपके चरणोंमें निछावर हो गया हूँ ।

'श्रीकृष्ण ! युधिष्ठिरका राजसूय-यज्ञ, वह मुझे कभी नहीं भूल सकता । मेरी आँखोंके सामनेकी बात है । ऋषियों, मुनियों और देवताओंके बीचमें आप सर्वोच्च सिंहासनपर बैठे हुए थे । पाण्डवोंने आपकी पूजा की । मुझे कितना आनन्द हुआ । आज मैं आपको देख रहा हूँ, मृत्युके समय मैं आपको देख रहा हूँ । अहोभाग्य, सचमुच मेरे अहो-भाग्य हैं । मैं कृतार्थ हो गया । मैंने मोहका परित्याग किया, मेरा अज्ञान नष्ट हो गया । मेरी आँखोंके सामनेसे अँधेरा हट गया । मैं देख रहा हूँ कि जैसे सूर्य अनेक पात्रोंमें रखे हुए पानीमें अनेकों रूपसे प्रतिबिम्बित होता है, परंतु वास्तवमें एक ही है, वैसे ही आप एक हैं और प्रत्येक शरीरमें भिन्न-भिन्न रूपोंसे प्रतीत होते हैं । वास्तवमें आप अजन्मा हैं, वे विभिन्न पात्र और उनमें रक्खा हुआ पानी भी नहीं है, केवल आप हैं । मैंने अभेदभावसे, अद्वैतभावसे आपको प्राप्त किया । मैं आपमें मिल गया, मैं आपसे एक हो गया ।'

इतना कहकर भीष्म चुप हो गये। देवता उनके शरीरपर पुष्प-वर्षा करने लगे । ऋषि-मुनि उनकी स्तुति करने लगे । लोगोंने बड़े आश्चर्यके साथ देखा कि भीष्मके शरीरका प्राण ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ता है, त्यों-त्यों उनके शरीरसे वाण निकलते जाते हैं और घाव भरता

जाता है । औरोंकी तो बात ही क्या स्वयं श्रीकृष्ण, व्यास और युधिष्टिर आश्चर्य-चकित हो गये । भीष्म भगवान्‌से एक हो गये । भगवान्‌में मिल गये । आकाशमें जय-जयकारके नारे लगने लगे ।

पाण्डवोंने चिता तैयार की । भीष्मका शरीर जला दिया गया । सब लोगोंने गङ्गाजलसे भीष्मको जलाञ्जलि दी । उस समय भगवती भागीरथी मूर्तिमान् होकर जलसे बाहर निकल आयीं । वे शोकसे व्याकुल होकर रो-रोकर भीष्मका गुणगान करने लगीं । वे कहने लगीं—'मेरे पुत्र भीष्म सारी पृथ्वीमें एक ही महापुरुष थे, उनका व्यवहार आदर्श था, उनकी बुद्धि विलक्षण थी, उनमें विनय आदिकी अविचल प्रतिष्ठा थी । वे वृद्धों और गुरुजनोंके सेवक थे । पिता और माताके भक्त थे । उनका ब्रह्मचर्य-व्रत अलौकिक था, परशुराम भी उन्हें नहीं हरा सके । पृथ्वीमें उनके समान पराक्रमी और कोई नहीं है । मेरे वही पराक्रमी पुत्र शिखण्डीके हाथों मारे गये, बड़े दुःखकी बात है । उनके वियोगमें मेरा हृदय फट नहीं जाता । मेरा हृदय पत्थरका बना है ।'

भगवान् श्रीकृष्ण और वेदव्यास उनके पास गये । उन्होंने कहा—'देवि ! तुम शोक मत करो, तुम्हारे पुत्र भीष्मने उत्तम गति प्राप्त की है । वे आठ वसुओंमेंसे एक वसु थे । वे लोकके महान् कल्याणकारी हैं । वशिष्ठके शापसे उनका जन्म हुआ था । उन्हें शिखण्डीने नहीं अर्जुनने मारा है । उन्हें इन्द्र भी नहीं मार सकते थे । उन्होंने अपनी इच्छासे ही शरीर-त्याग किया है ।' उनके समझानेसे भगवती भागीरथीका शोक बहुत कुछ दूर हो गया । वे अपने लोकको चली गयीं । सब लोग वहाँसे हस्तिनापुर चले आये ।

श्रीहरिः

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा लिखित—

भगवच्चर्चा (छः भागोंमें)

इनमें ऐसे अनूठे विषय भरे हैं कि जिनमें छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, आस्तिक-नास्तिक, विद्वान्-मूर्ख, सकाम-निष्काम, त्यागी-गृहस्थी और प्रेमी-ज्ञानी, सभी कुछ-न-कुछ अपने मनकी बात पा सकते हैं।

भाग १—(तुलसीदल) पृष्ठ २८८, सचित्र, ॥), स० ॥।=)

भाग २—(नैवेद्य) पृष्ठ २६४, सचित्र, ॥), सजिल्द ॥।=)

भाग ३—पृष्ठ ४०८, सचित्र, मूल्य ॥।), सजिल्द १=)

भाग ४—पृष्ठ ४३६, सचित्र, मूल्य ॥।-), सजिल्द १≡)

भाग ५—पृष्ठ ४००, सचित्र, मूल्य ॥।), सजिल्द १=)

भाग ६—पृष्ठ ४००, सचित्र, मूल्य ॥।), सजिल्द १=)

[प्रत्येक भागकी एक-एक प्रति अवश्य संग्रहणीय है ।]

विशेष जानकारीके लिये सूचीपत्र विना मूल्य मँगवाइये ।

(गोरखपुर)